पिछले चालीस सालों से उर्दू भाषा में लाखों की तादाद में प्रकाशित होकर क़ुरआनी उलूम को बेशुमार अफ़राद तक पहुँचाने वाली बेनज़ीर तफ़सीर

मआरिफ़ुल क़ुरआन

1

तफ़सीर

हज़रत मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी देवबन्दी रह०

(मुफ़्ती-ए-आज़म पाकिस्तान व दारुल-उलूम देवबन्द)

पिछले चालीस सालों से उर्दू भाषा में लाखों की तादाद में प्रकाशित होकर क़ुरआनी उलूम को बेशुमार अफ़राद तक पहुँचाने वाली बेनज़ीर तफ़सीर

मआ़रिफ़ुल-क़ुरआन

जिल्द (1)

उर्दू तफ़्सीर

हज़रत मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी देवबन्दी रह.

(मुफ़्ती-ए-आज़म पाकिस्तान व दारुल-उलूम देवबन्द)

हिन्दी अनुवादक

मौलाना मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी (एम. ए. अलीग.)

रीडर अल्लामा इकबाल यूनानी मैडिकल कॉलेज मुज़फ़्फ़र नगर (उ.प्र.)

फ़रीद बुक डिपो (प्रा.) लि.

2158, एम. पी. स्ट्रीट, पटौदी हाऊस, दरिया गंज

नई दिल्ली-110002

सर्वाधिकार प्रकाशक के लिए सुरक्षित हैं

****

तफ़सीर मआ़रिफ़ुल-क़ुरआन

हज़रत मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहिब रह.

(मुफ़्ती-ए-आज़म पाकिस्तान)

हिन्दी अनुवाद

मौलाना मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी एम. ए. (अ़लीग.)

मौहल्ला महमूद नगर, मुज़फ़्फ़र नगर (उ. प्र.)

फ़ोन न. 0131.2442408, 09456095608

जिल्द (1) सूरः फ़ातिहा ---- सूरः ब-क़रह

प्रकाशन वर्ष मार्च 2012

प्रकाशक

फ़रीद बुक डिपो (प्रा.) लि.

2158, एम. पी. स्ट्रीट, पटौदी हाऊस, दरिया गंज, नई दिल्ली-110002

بسم الله الرحمن الرحيم

وَاعْتَصِمُوا بِحَبْلِ اللّٰهِ جَمِيعًا وَلَا تَفَرَّقُوا

WA'A TASIMOO BIHAB LIL.LAHI JAMEE-'AN WA LAA TAFARRAQOO

समर्पित

✪ अल्लाह सुब्हानहू व तआला के कलाम **क़ुरआन मजीद** के प्रथम व्याख्यापक, हादी-ए-आलम, आख़िरी पैग़म्बर, तमाम नबियों में अफ़ज़ल **हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम** के नाम, जिनका एक-एक क़ौल व अमल कलामे रब्बानी और मन्शा-ए-इलाही की अमली तफ़सीर था।

✪ **दारुल-उलूम देवबन्द** के नाम, जो क़ुरआन मजीद और उसकी तफ़सीर (हदीसे पाक) की अज़ीमुश्शान ख़िदमत और दीनी रहनुमाई के सबब पूरी इस्लामी दुनिया में एक मिसाली संस्था है। जिसके इल्मी फ़ैज़ से मुस्तफ़ीद (लाभान्वित) होने के सबब इस नाचीज़ को इल्मी समझ और क़ुरआन मजीद की इस ख़िदमत की तौफ़ीक़ नसीब हुई।

✪ **उन तमाम नेक रूहों और हक़ के तलाश करने वालों** के नाम, जो हर तरह के पक्षपात से दूर रहकर और हर प्रकार की कठिनाईयों का सामना करके अपने असल मालिक व ख़ालिक़ के पैग़ाम को क़ुबूल करने वाले और दूसरों को कामयाबी व निजात के रास्ते पर लाने के लिये प्रयासरत हैं

मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज़ानवी

दिल की गहराईयों से शुक्रिया

❂ मोहतरम जनाब अल-हाज मुहम्म नासिर ख़ाँ साहिब (मालिक फ़रीद बुक डिपो नई दिल्ली) का, जिनकी मुहब्बतों, इनायतों, क़द्रदानियों और मुझे अपने इदारे से जोड़े रखने के सबब क़ुरआन मजीद की यह अहम ख़िदमत अन्जाम पा सकी।

❂ मेरे उन बच्चों का जिन्होंने इस तफ़सीर की तैयारी में मेरा भरपूर साथ दिया, तथा मेरे सहयोगियों, सलाहकारों, शुभ-चिन्तकों और हौसला बढ़ाने वाले हज़रात का, अल्लाह तआला इन सब हज़रात को अपनी तरफ़ से ख़ास जज़ा और बदला इनायत फ़रमाये। आमीन या रब्बल्-अ़लमीन।

मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी

मुख़्तसर विषय-सूची

मआरिफ़ुल-क़ुरआन जिल्द नम्बर (1)

उनवान	पेज
समर्पित	5
दिल की गहराईयों से शुक्रिया	6
प्रकाशक के क़लम से	23
अनुवादक की ओर से	24
पेश-लफ़्ज़	28
मुक़द्दिमा	29
'वही' और उसकी हक़ीक़त	29
वही की ज़रूरत	29
हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम पर वही नाज़िल होने के तरीक़े	30
क़ुरआन के नाज़िल होने का इतिहास	33
सबसे पहले नाज़िल होने वाली आयत	34
मक्की और मदनी आयतें	35
मक्की व मदनी आयतों की ख़ुसूसियात	36
क़ुरआने करीम का थोड़ा-थोड़ा उतरना	38
शान-ए-नुज़ूल	39
क़ुरआने करीम के सात हुरूफ़ और क़िराअतें	40
सात हुरूफ़ से मुराद सात अन्दाज़ और तरीक़े हैं	41
क़िराअत में क़ुबूलियत का मेयार	44
सात क़ारी	45
दस और चौदह क़िराअतें	46
क़ुरआन की हिफ़ाज़त का इतिहास	47
ज़माना-ए-नबवी में क़ुरआन की हिफ़ाज़त	47
वही का लेखन	49
हज़रत अबू बक्र रज़ियल्लाहु अन्हु के ज़माने में क़ुरआन का जमा किया जाना	50
क़ुरआन पाक के इकट्ठा करने के सिलसिले में हज़रत ज़ैद बिन साबित का तरीक़े कार	51
'उम्म' की ख़ुसूसियतें	53

उनवान	पेज
हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु के ज़माने में क़ुरआन को जमा किया जाना	53
तिलावत में आसानी पैदा करने के इक़्दामात	57
नुक़्ते (बिन्दियाँ)	58
हरकतें	58
अहज़ाब या मन्ज़िलें	59
हिस्से या पारे	59
अख़मास और आशार	60
रुकूअ़	60
रुमूज़-ए-औक़ाफ़ (ठहरने और साँस लेने के इशारात)	61
क़ुरआने करीम की छपाई	63
इल्मे तफ़सीर	63
तफ़सीरे क़ुरआन के स्रोत	64
1. क़ुरआने करीम	65
2. हदीस	65
3. सहाबा रज़ियल्लाहु अन्हुम के अक़वाल	66
4: ताबिईन हज़रात के अक़वाल	66
5. लुग़ते अ़रब	67
6. ग़ौर व फ़िक्र और इस्तिंबात	67
इस्राईली रिवायतों का हुक्म	67
क़ुरआनी तफ़सीर के बारे में एक बहुत बड़ी ग़लत-फ़हमी	69
मशहूर तफ़सीरें	72
तफ़सीर इब्ने जरीर	72
तफ़सीर इब्ने कसीर	73
तफ़सीरे क़ुर्तुबी	73
तफ़सीरे कबीर	74
तफ़सीर 'अल-बहरुल-मुहीत'	74
अहकामुल-क़ुरआन	75
तफ़सीर 'अद्दुर्रुल-मन्सूर'	75
तफ़सीरे मज़हरी	75
तफ़सीर रूहुल-मआनी	76
तमहीद	77
दुनिया की सबसे बड़ी नेमत क़ुरआन है	77

उनवान	पेज
मुसन्निफ़ के मुख़्तसर हालात (अपने ही क़लम से)	78
तफ़सीर "मआरिफ़ुल-क़ुरआन" लिखने के क़ुदरती असबाब	82
तक़दीर का करिश्मा, एक सख़्त और लम्बी बीमारी तफ़सीर को पूरा करने का सबब बन गई	83
'मआरिफ़ुल-क़ुरआन' की विशेषतायें उन बातों का बयान जिनकी इसमें रियायत रखी गयी है	88
एक अहम बात	93

सूरः फ़ातिहा

सूरः फ़ातिहा के फ़ज़ाईल और विशेषतायें	97
बिस्मिल्लाह क़ुरआन की एक आयत है	98
क़ुरआन की तिलावत और हर अहम काम को बिस्मिल्लाह से शुरू करने का हुक्म	98
हर काम को बिस्मिल्लाह से शुरू करने की हिक्मत	99
'बिस्मिल्लाहिर्रह्मानिर्रहीम' की तफ़सीर	100
मसला	101
हिक्मत	101
अहकाम व मसाईल	102
'तअव्वुज़' (अऊज़ु बिल्लाह) का मसला	102
बिस्मिल्लाह के अहकाम	102
सूरः फ़ातिहा के मज़ामीन	104
'रब्बिल-आलमीन' की तफ़सीर	106
'रोज़े जज़ा' की हक़ीक़त और अक़्ली तौर पर उसकी ज़रूरत	109
मालिक कौन है?	110
हिदायत के दर्जे	113
'सिराते मुस्तक़ीम' कौनसा रास्ता है?	118
सिराते मुस्तक़ीम अल्लाह की किताब और अल्लाह वालों दोनों के मजमूए से मिलता है	119
सामुदायिक झगड़ों का बड़ा सबब	121
सूरः फ़ातिहा के मुताल्लिक़ अहकाम व मसाईल	121
दुआ करने का तरीक़ा	121
अल्लाह तआला की तारीफ़ करना इनसान का फ़ितरी फ़र्ज़ है	121

	उनवान	पेज
✪	खुद अपनी तारीफ़ किसी इनसान के लिये जायज़ नहीं	124
✪	लफ़्ज़ 'रब' अल्लाह तआला का ख़ास नाम है अल्लाह के अलावा किसी और को 'रब' कहना जायज़ नहीं	124
✪	इस्तिआनत के मायने की वज़ाहत और मसला-ए-तवस्सुल की तहक़ीक़	125
✪	अल्लाह के अलावा किसी की इबादत जायज़ नहीं	125
✪	'इस्तिआनत' व 'तवस्सुल' के मसले की तहक़ीक़ और अहकाम की तफ़सील	127
✪	'सिराते मुस्तक़ीम' की हिदायत दुनिया व दीन में कामयाबी की कुन्जी है	129

पहला पारा

✪	नाम और आयतों की तादाद	133
✪	नाज़िल होने का ज़माना	133
✪	सूरः ब-क़रह के फ़ज़ाईल	133
✪	अहकाम व मसाईल	134

सूरः ब-क़रह

✪	हुरूफ़े मुक़त्तआ़ जो बहुत सी सूरतों के शुरू में आते हैं उनकी तहक़ीक़	136
✪	मुत्तक़ी लोगों की ख़ास सिफ़ात	138
✪	पहला मसला- ईमान की तारीफ़	139
✪	दूसरा मसला- नमाज़ का क़ायम करना	140
✪	तीसरा मसला- अल्लाह की राह में ख़र्च करना	140
✪	ईमान और इस्लाम में फ़र्क़	141
✪	ख़त्मे नुबुव्वत के मसले की एक स्पष्ट दलील	143
✪	मुत्तक़ी लोगों की एक सिफ़त आख़िरत पर ईमान लाना	144
✪	आख़िरत पर ईमान एक क्रांतिकारी अक़ीदा है	144
✪	मज़मून का खुलासा और इसका पिछली आयतों से ताल्लुक़	146
✪	कुफ़्र की तारीफ़ (परिभाषा)	147
✪	'इन्ज़ार' के मायने	147
✪	गुनाहों की दुनियावी सज़ा 'तौफ़ीक़ का छीन लिया जाना'	148
✪	नसीहत नासेह के लिये हर हाल में मुफ़ीद है मुख़ातब क़ुबूल करे या न करे	149
✪	एक शुब्हे का जवाब	149

उनवान	पेज
✪ क्या कुफ्र व निफ़ाक़ ज़माना-ए-नबवी के साथ मख़्सूस था, या अब भी मौजूद है?	157
✪ ईमान व कुफ्र की हक़ीक़त	157
✪ कुफ्र व ईमान का क़ानून	158
✪ एक शुब्हा और उसका जवाब	159
✪ झूठ एक घिनौनी चीज़ है	159
✪ अम्बिया व औलिया के साथ बुरा सुलूक करना अल्लाह तआला के साथ बुराई करना है	159
✪ झूठ बोलने का वबाल	160
✪ सुधार व बिगाड़ की परिभाषा और सुधार व बिगाड़ करने वाले की पहचान	160
✪ ज़मीन व आसमान की कायनात में क़ुदरते हक़ की निशानियाँ	165
✪ पहली नेमत	166
✪ किसी का अमल उसकी निजात और जन्नत में जाने का यक़ीनी सबब नहीं	170
✪ अक़ीदा-ए-तौहीद ही दुनिया में अमन व अमान और सुकून व इत्मीनान की गारंटी देता है	170
✪ रिसालते मुहम्मदी का सुबूत क़ुरआना चुनौती के ज़रिये	172
✪ इन आयतों का पिछली आयतों से ताल्लुक़ और मज़मून का ख़ुलासा	172
✪ क़ुरआन एक ज़िन्दा और क़ियामत तक बाक़ी रहने वाला मोजिज़ा है	175
✪ क़ुरआन के मोजिज़ा होने की वज़ाहत	176
✪ क़ुरआन के मोजिज़ा होने की वुजूहात	176
✪ क़ुरआन के मोजिज़ा होने की दूसरी वजह	178
✪ तीसरी वजह	184
✪ चौथी वजह	184
✪ पाँचवीं वजह	184
✪ छठी वजह	185
✪ सातवीं वजह	185
✪ आठवीं वजह	186
✪ नवीं वजह	186
✪ दसवीं वजह	187
✪ कुछ शुब्हात और उनके जवाबात	191
✪ रिसाल में किसी हक़ीर व घटिया या शर्मनाक चीज़ का ज़िक्र करना कोई ऐब नहीं है	201
✪ ताल्लुक़ात के शरई हुक़ूक़ अदा करना वाजिब है उसके ख़िलाफ़ करना बड़ा गुनाह है	201
✪ बर्ज़ख़ (मौत के बाद) की ज़िन्दगी	204

उनवान	पेज
✪ नस्ली मुसलमान हो या यहूदी व ईसाई, अल्लाह के यहाँ उसकी कोई क़ीमत नहीं, असल चीज़ ईमान और नेक अमल है	331
✪ तफ़सीर बयानुल-क़ुरआन से कुछ फ़ायदे की बातें	336
✪ क़िब्ले के बदल जाने की बहस	340
✪ हज़रत इब्राहीम ख़लीलुल्लाह की ज़बरदस्त परीक्षायें और परीक्षाओं के मज़ामीन	350
✪ अल्लाह तआला के नज़दीक इल्मी नुक्तों से ज़्यादा क़ाबिले क़द्र अख़्लाक़ व किरदार के साथ अमल पर जमे रहना है	351
✪ हज़रत इब्राहीम ख़लीलुल्लाह अलैहिस्सलाम की मक्का को हिजरत और बैतुल्लाह की तामीर का तफ़सीली वाक़िआ	357
✪ हरम शरीफ़ से संबन्धित अहकाम व मसाईल	361
✪ हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम की दुआयें	366
✪ हज़रत इब्राहीम की दानिशमन्दी	367
✪ फलों का रिज़्क़ ज़िन्दगी की तमाम ज़रूरतों को शामिल है	368
✪ हज़रत इब्राहीम ख़लीलुल्लाह अलैहिस्सलाम की एहतियात	368
✪ अपने नेक अमल पर भरोसा और क़नाअत न करने की तालीम	369
✪ लुग़ात की तशरीह	371
✪ रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के भेजे जाने की ख़ुसूसियत	372
✪ रसूल सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को भेजने के तीन उद्देश्य	372
✪ पहला मक़सद 'आयतों की तिलावत'	373
✪ क़ुरआने करीम के अलफ़ाज़ अगर बेसमझे भी पढ़े जायें तो बेकार नहीं, बल्कि बड़े सवाब का ज़रिया हैं	374
✪ दूसरा मक़सद 'किताब की तालीम'	375
✪ तीसरा मक़सद 'सफ़ाई और पाक करना'	377
✪ हिदायत व इस्लाह के दो सिलसिले 'किताबुल्लाह' और 'रिजालुल्लाह'	377
✪ इनसान की इस्लाह के लिये सिर्फ़ सही तालीम भी काफ़ी नहीं, अख़्लाक़ी तरबियत भी ज़रूरी है	381
✪ मिल्लते इब्राहीमी का बुनियादी उसूल इस्लाम यानी इताअते हक़ है, वह सिर्फ़ इस्लाम में सीमित है	385
✪ औलाद के लिये कोई दौलत दीन व अख़्लाक़ सिखाने के बराबर नहीं	391
✪ दादा की मीरास के बारे में मसला	392
✪ बाप-दादा के आमाल की जज़ा व सज़ा औलाद पर नहीं होगी	392
✪ ईमान की मुख़्तसर और जामे तफ़सीर	396

उनवान	पेज
✪ फ़रिश्ते और रसूल की अज़मत व मुहब्बत में एतिदाल मतलूब है, हद से बढ़ना गुमराही है	397
✪ नबी व रसूल की ख़ुद गढ़ी हुई किस्में- ज़िल्ली, बरूज़ी, लुग़वी सब गुमराही है	397
✪ 'आख़िरत पर ईमान' के बारे में अपनी तरफ़ से गढ़े हुए ग़लत मायने मरदूद हैं	398
✪ रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की हिफ़ाज़त की ज़िम्मेदारी हक़ तआला ने ले ली	398
✪ दीन व ईमान एक गहरा रंग है जो इनसान के चेहरे और हालत से नज़र आना चाहिये	398
✪ इख़्लास की हक़ीक़त	401

दूसरा पारा 'स-यक़ूलु'

✪ नमाज़ में ख़ास बैतुल्लाह का सामने रखना ज़रूरी नहीं, उसकी दिशा का सामने होना भी बाहरी दुनिया के लिये काफ़ी है	406
✪ उम्मते मुहम्मदिया का ख़ास एतिदाल	408
✪ उम्मत के एतिदाल की हक़ीक़त, अहमियत और उसकी कुछ तफ़सील	409
✪ उम्मते मुहम्मदिया में हर क़िस्म का एतिदाल	411
✪ एतिक़ादी एतिदाल	413
✪ अमल और इबादत में एतिदाल	414
✪ सामाजिक और तहज़ीबी एतिदाल	414
✪ आर्थिक और माली एतिदाल	415
✪ गवाही के लिये मोतबर और भरोसे वाला होना शर्त है	415
✪ 'इजमा' का हुज्जत होना	415
✪ काबा शरीफ़ के नमाज़ का क़िब्ला बनने की शुरूआत कब हुई?	417
✪ कुछ संबन्धित अहकाम	418
✪ कभी सुन्नत को क़ुरआन के ज़रिये भी मन्सूख़ किया जाता है	418
✪ 'ख़बरे वाहिद' जबकि मज़बूत क़राईन उसके सुबूत पर मौजूद हों, उससे क़ुरआनी हुक्म मन्सूख़ समझा जा सकता है	419
✪ माइक की आवाज़ पर नमाज़ के अरकान अदा करने पर नमाज़ के फ़ासिद न होने पर इस्तिदलाल	420
✪ क़िब्ले की तरफ़ रुख़ करने का मसला	424
✪ क़िब्ले का रुख़ मालूम करने के लिये शरई तौर पर उपकरणों और रियाज़ी के	

	उनवान	पेज
	हिसाबात पर मदार नहीं	425
✪	क़िब्ला बदलने की तीसरी हिक्मत	432
✪	क़िब्ले के बदलने की हिक्मतें	432
✪	मज़हबी मसाईल में फ़ुज़ूल बहसों से बचने की हिदायत	434
✪	इबादतों और नेक आमाल में बिना वजह देर करना मुनासिब नहीं, जल्दी करनी चाहिये	434
✪	क्या हर नमाज़ का अव्वल वक़्त में पढ़ना अफ़ज़ल है?	434
✪	अल्लाह के ज़िक्र के फ़ज़ाईल	437
✪	अल्लाह के ज़िक्र की असल हक़ीक़त	437
✪	सब्र और नमाज़ हर मुश्किल का हल और हर तकलीफ़ का इलाज हैं	439
✪	सब्र की असल हक़ीक़त	439
✪	सब्र और नमाज़ तमाम मुश्किलों व मुसीबतों से निजात का सबब क्यों है?	440
✪	शहीदों और अम्बिया अलैहिमुस्सलाम की बर्ज़ख़ी ज़िन्दगी और उसके दर्जों में फ़र्क़	442
✪	मुसीबतों पर सब्र को आसान करने की ख़ास तदबीर	444
✪	मुसीबत में 'इन्ना लिल्लाहि....' को समझकर पढ़ा जाये तो दिल के सुकून का बेहतरीन इलाज है	445
✪	चन्द अलफ़ाज़ के मायनों की तहक़ीक़	446
✪	सफ़ा व मरवा के बीच 'सई' वाजिब है	446
✪	इल्मे दीन का ज़ाहिर करना और फैलाना वाजिब है और उसका छुपाना सख़्त हराम है	449
✪	हदीसे रसूल भी क़ुरआन के हुक्म में है	450
✪	कुछ गुनाहों का वबाल ऐसा होता है कि उस पर सारी मख़्लूक़ लानत करती है	451
✪	किसी ख़ास शख़्स पर लानत उस वक़्त तक जायज़ नहीं जब तक उसके कुफ़्र पर मरने का यक़ीन न हो जाये	451
✪	तौहीद का तफ़सीली मफ़्हूम	453
✪	कुछ अलफ़ाज़ के मायने	458
✪	जाहिलाना तक़लीद और मुज्तहिद इमामों की तक़लीद में फ़र्क़	461
✪	हलाल खाने की बरकत और हराम खाने की नहूसत	463
✪	मैता (मुर्दार)	464
✪	बन्दूक़ की गोली से शिकार	465
✪	ख़ून के मसाईल	466
✪	मरीज़ को दूसरे का ख़ून देने का मसला	467
✪	सुअर का हराम होना	468

	उनवान	पेज
✪	ग़ैरुल्लाह के नाम किये हुए जानवर की तीन सूरतें	468
✪	अल्लाह के अलावा किसी और की मन्नत मानने का मसला	472
✪	बेक़रारी व मजबूरी के अहकाम	472
✪	अहम फ़ायदा	473
✪	मजबूरी व बेक़रारी की हालत में दवा के तौर पर हराम चीज़ों का इस्तेमाल	473
✪	बेक़रारी की हालत के बग़ैर आम इलाज व दवा के लिये हराम चीज़ का इस्तेमाल	474
✪	दीन बेचने की सज़ा	476
✪	'अब्वाबुल-बिर्र' (ख़ूबी और कमाल की बातें)	478
✪	पहला हुक्म 'क़िसास'	482
✪	क़िसास के बारे में इस्लाम का न्यायपूर्ण क़ानून और क़िसास के मसाईल	484
✪	'अबवाबुल-बिर्र' का दूसरा हुक्म "वसीयत"	486
✪	दूसरा हुक्म वसीयत का फ़र्ज़ होना	487
✪	तीसरा हुक्म- वसीयत एक तिहाई माल से ज़्यादा की जायज़ नहीं	488
✪	हुक्म 3- रोज़ा	490
✪	पिछली उम्मतों में रोज़े का हुक्म	490
✪	बीमार का रोज़ा	491
✪	मुसाफ़िर का रोज़ा	491
✪	रोज़े की क़ज़ा	492
✪	मसला	492
✪	रोज़े का फ़िदया	492
✪	फ़िदये की मात्रा और सम्बन्धित मसाईल	494
✪	रोज़े के दिनों का निर्धारण	495
✪	हुक्म 4- रमज़ान की रातों में सोहबत	501
✪	हुक्म 5- एतिकाफ़	501
✪	शरई अहकाम के साबित होने के लिये रसूले करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का क़ौल भी क़ुरआन के हुक्म में है	502
✪	सेहरी खाने का आख़िरी वक़्त	502
✪	एतिकाफ़ और उसके मसाईल	504
✪	रोज़े के मामले में एहतियात का हुक्म	505
✪	हुक्म 6- हराम माल से बचना	506
✪	माल कमाने के अच्छे-बुरे साधन और अच्छाई-बुराई का मेयार	506
✪	इस्लामी आर्थिक सिस्टम ही दुनिया में आम अमन क़ायम कर सकता है	507

	उनवान	पेज
✪	इस आयत का शाने नुज़ूल (उतरने का मौक़ा और सबब)	508
✪	हलाल माल की बरकतें और हराम माल की नहूसत	510
✪	क़ियामत के दिन हर इनसान से होने वाले पाँच अहम सवाल	511
✪	हुक्म 7- हज वग़ैरह में चाँद के हिसाब का एतिबार	513
✪	हुक्म 8- जाहिलीयत की रस्मों की इस्लाह	514
✪	हुक्म 9- काफ़िरों को क़त्ल करना	514
✪	चाँद और सूरज के हिसाब की शरई हैसियत	516
✪	मसला	517
✪	जिहाद व क़िताल	517
✪	हुक्म 10- जिहाद में ख़र्च करना	521
✪	जिहाद के लिये माल ख़र्च करना	522
✪	हुक्म 11- हज व उमरे से सम्बन्धित	526
✪	हज व उमरे के अहकाम	529
✪	उमरे का हुक्म	529
✪	एहराम के बाद कोई मजबूरी पेश आ जाये हज व उमरा अदा न कर सकें तो क्या करें?	530
✪	एहराम की हालत में बाल मुंडाने पर कोई मजबूर हो जाये तो वह क्या करे?	531
✪	हज के महीने में हज व उमरे को जमा करने के अहकाम	532
✪	तमत्तो व क़िरान	532
✪	हज व उमरे के अहकाम में ख़िलाफ़वर्ज़ी और कोताही अज़ाब का सबब है	532
✪	हज के अहकाम की आठ आयतों में से दूसरी आयत और उसके मसाईल	533
✪	क़ुरआन का उम्दा अन्दाज़े बयान	535
✪	हज के सफ़र में तिजारत या मज़दूरी करना कैसा है?	536
✪	अरफ़ात में वक़ूफ़ और उसके बाद मुज़्दलिफ़ा का वक़ूफ़	537
✪	इनसानी बराबरी का सुनहरा सबक़ और इसकी बेहतरीन अमली सूरत	539
✪	जाहिलीयत की रस्मों की इस्लाह मिना में फ़ुज़ूल जलसों और प्रोग्रामों की मनाही	539
✪	एक और जाहिली रस्म की इस्लाह दीन व दुनिया की तलब में इस्लामी एतिदाल	541
✪	मिना में दो या तीन दिन का ठहरना और अल्लाह के ज़िक्र की ताकीद	543
✪	चेतावनी	550
✪	चन्द मसाईल	558

	उनवान	पेज
✪	हुक्म 12 सदक़े के ख़र्च करने की जगहें	562
✪	हुक्म 13- जिहाद का फ़र्ज़ होना	566
✪	हुक्म 14- सम्मानित महीने में लड़ाई व जंग की तहक़ीक़	567
✪	दीन से फिर जाने का अन्जाम	568
✪	नीयत के सही होने पर सवाब का वायदा	568
✪	जिहाद के कुछ अहकाम	568
✪	सम्मानित महीनों में क़िताल का हुक्म	570
✪	दीन इस्लाम से फिर जाने का अन्जाम	572
✪	हुक्म 15- शराब और जुए से संबन्धित	573
✪	शराब का हराम होना और उससे संबन्धित अहकाम	573
✪	शराब के धीरे-धीरे हराम होने के अहकाम	575
✪	सहाबा किराम में हुक्म की तामील का बेमिसाल जज़्बा	577
✪	इस्लामी सियासत और आम मुल्की सियासतों का ज़बरदस्त फ़र्क़	578
✪	शराब की ख़राबियों और फ़ायदों की तुलना	579
✪	वज़ाहत व तफ़सीर	582
✪	जुए का हराम होना	583
✪	जुए के समाजी और सामूहिक नुक़सानात	585
✪	चन्द फ़िक़्ही उसूल और फ़ायदे	587
✪	एक और फ़िक़्ही ज़ाब्ता	587
✪	हुक्म 16- ख़र्च करने की मात्रा	587
✪	हुक्म 17- यतीम के साथ मिलजुल कर रहना	589
✪	हुक्म 18- काफ़िरों के साथ निकाह का मसला	590
✪	तफ़सीर 'बयानुल-क़ुरआन' से कुछ हिदायतें	590
✪	मुस्लिम व काफ़िर का आपस में निकाह करना नाजायज़ है	591
✪	हुक्म 19- माहवारी में सोहबत की हुर्मत और पाकी की शर्तें	594
✪	हुक्म 20- नेक काम न करने की क़सम की मनाही	595
✪	हुक्म 21- झूटी क़सम खाने का हुक्म	596
✪	हुक्म 22- ईला का हुक्म	596
✪	हुक्म 23, 24- तलाक़ पाई हुई औरत की इद्दत और लौटा लेने की मुद्दत का बयान	597
✪	आयत से संबन्धित मसाईल 'बयानुल-क़ुरआन' से	598
✪	मर्द व औरत के फ़र्क़ और मियाँ-बीवी के आपसी हुक़ूक़ और दर्जों पर एक जामे आयत	599

	उनवान	पेज
✪	इस्लाम में औरत का मर्तबा	599
✪	इस्लाम से पहले समाज में औरत का दर्जा	600
✪	औरतों को मर्दों की सरदारी और निगरानी से बिल्कुल आज़ाद कर देना भी दुनिया के फ़साद का बहुत बड़ा सबब है	601
✪	मर्द व औरत में दर्जे का बढ़ा हुआ होना दुनियावी मामलात में है, आख़िरत की फ़ज़ीलत में इसका कोई असर नहीं	603
✪	हुक्म 25- रजई तलाक़ की संख्या	606
✪	हुक्म 26- ख़ुला	606
✪	हुक्म 27- तीन तलाक़ों के बाद हलाला	607
✪	निकाह व तलाक़ की शरई हैसियत और हकीमाना निज़ाम	607
✪	तीन तलाक़ और उसके अहकाम की तफ़सील	611
✪	अगर किसी ने शरई तरीक़े के ख़िलाफ़ और नापसन्दीदा अन्दाज़ से तीन तलाक़ें दे दीं तो उसका असर क्या होगा?	614
✪	हज़रत फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अन्हु का वाक़िआ और उस पर शुब्हा व जवाब	617
✪	हुक्म 28- औरतों को अधर में रखने की मनाही	622
✪	हुक्म 29- औरतों को दूसरे निकाह से रोकने की मनाही	622
✪	तलाक़ के अहकाम के बाद रोक रखने या निकाह को ख़त्म कर देने, दोनों के लिये ख़ास हिदायतें	623
✪	निकाह और तलाक़ को खेल न बनाओ	625
✪	तलाक़ में असल यही है कि खुले लफ़्ज़ों में और 'रजई तलाक़' दी जाये	627
✪	तलाक़ पाने वाली औरतों को बिना शरई कारण के अपनी मर्ज़ी की शादी करने से रोकना हराम है	627
✪	क़ानून बनाने और उसको लागू करने में क़ुरआने करीम का बेनज़ीर हकीमाना उसूल	630
✪	हुक्म 30- दूध पिलाना	632
✪	दूध पिलाना माँ के ज़िम्मे वाजिब है	633
✪	दूध पिलाने की पूरी मुद्दत	633
✪	बच्चे को दूध पिलाना माँ के ज़िम्मे और माँ का ज़रूरी ख़र्च बाप के ज़िम्मे है	634
✪	बीवी का ख़र्च शौहर की हैसियत के अनुसार होना चाहिये या बीवी की हैसियत के मुवाफ़िक़	634
✪	माँ को दूध पिलाने पर मजबूर करने या न करने की तफ़सील	635
✪	औरत जब तक निकाह में है तो अपने बच्चे को दूध पिलाने की उजरत का मुतालबा नहीं कर सकती, तलाक़ व इद्दत के बाद कर सकती है	635

उनवान	पेज
यतीम बच्चे को दूध पिलवाने की ज़िम्मेदारी किस पर है?	635
दूध छुड़ाने के अहकाम	636
माँ के सिवा दूसरी औरत का दूध पिलवाने के अहकाम	636
हुक्म 31- शौहर की वफ़ात होने की सूरत में इद्दत का बयान	638
हुक्म 32- इद्दत में निकाह का पैग़ाम	638
'इद्दत' के कुछ अहकाम	639
हुक्म 33- सोहबत से पहले तलाक़ की सूरत में	640
मेहर के वाजिब होने या न होने का बयान	640
हुक्म 34- नमाज़ों की हिफ़ाज़त का बयान	643
हुक्म 35- बेवा औरत की रिहाईश और ख़र्चा देने की कुछ सूरतों का बयान	645
आयत से संबन्धित मसाईल	650
तदबीर पर तक़दीर ग़ालिब है	650
जिस बस्ती में कोई वबा ताऊन वग़ैरह हो उसमें जाना या वहाँ से भागकर कहीं और जाना दोनों नाजायज़ हैं	650
ताऊन के बारे में हुज़ूरे पाक के इरशाद की हिक्मतें	652
कुछ ख़ास सूरतें इस हुक्म से बाहर हैं	653
जिहाद वग़ैरह ख़ैर के कामों में ख़र्च करने की तरग़ीब	655
तालूत और जालूत का क़िस्सा	660
नुबुव्वते मुहम्मदिया पर दलील पकड़ना	663

तीसरा पारा 'तिल्करुसुलु'

अल्लाह के रास्ते में ख़र्च करने में जल्दी करना	667
आयतुल-कुर्सी के ख़ास फ़ज़ाईल	669
हज़रत इब्राहीम ख़लीलुल्लाह अलैहिस्सलाम की दरख़्वास्त, मौत के बाद ज़िन्दा होने को देखना और शुब्हात का ख़ात्मा	680
बयान हुए वाक़िए पर चन्द सवालात और उनके जवाबात	682
अल्लाह की राह में ख़र्च करने की एक मिसाल	689
सदक़ा क़ुबूल होने की सकारात्मक शर्तें	689
सदक़ा क़ुबूल होने की नकारात्मक शर्तें	690
उश्री ज़मीन के अहकाम	698
हिक्मत के मायने और तफ़सीर	699

उनवान	पेज

	उनवान	पेज
✪	सूद व रिबा के मसले की कुछ और वज़ाहत व तफ़सील	719
✪	असल सूद की परिभाषा में कभी कोई अस्पष्टता नहीं रही एक मुग़ालते और धोखे का जवाब	720
✪	इस तफ़सील से चन्द चीज़ें स्पष्ट हो गईं	725
✪	सूद के हराम होने की हिक्मत व मस्लेहत	726
✪	सूद व रिबा की आर्थिक ख़राबियाँ	728
✪	अपने को आगे बढ़ाने और मिल्लत को तबाह करने की एक और चाल	731
✪	एक शुब्हा और उसका जवाब	732
✪	ज़कात का फ़रीज़ा एक हैसियत से तिजारत की तरक़्क़ी का ज़मानती है	732
✪	सूद की रूहानी बीमारियाँ	733
✪	क्या सूद के बग़ैर कोई कारोबार नहीं चल सकता?	733
✪	सूद के बारे में रसूले करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के फ़रमान	736
✪	क़र्ज़ और उधार के लिये इक़रार नामा लिखने की हिदायत और उससे संबन्धित अहकाम	741
✪	क़ानूने गवाही के चन्द अहम उसूल	743
✪	गवाही के लिये दो मर्द या एक मर्द और दो औरतें होना ज़रूरी हैं	743
✪	गवाहों की शर्तें	743
✪	बिना किसी शरई कारण के गवाही देने से इनकार करना गुनाह है	743
✪	इस्लाम में अदल व इन्साफ़ को क़ायम करने का अहम उसूल कि गवाहों को कोई नुक़सान या तकलीफ़ न पहुँचे	744
✪	सूरः ब-क़रह की इन आख़िरी दो आयतों के ख़ास फ़ज़ाईल	751
✪	कुछ अलफ़ाज़ और उनके मायने	756

✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪

प्रकाशक के क़लम से

अल्लाह तआला का लाख-लाख शुक्र व एहसान है कि उसने मुझे और मेरे इदारे (**फ़रीद बुक डिपो नई दिल्ली**) को इस्लामी, दीनी और तारीख़ी किताबों के प्रकाशन के ज़रिये दीनी व दुनियावी उलूम की ख़िदमत की तौफ़ीक़ अता फ़रमाई।

अल्हम्दु लिल्लाह हमारे इदारे से क़ुरआन पाक, हदीस मुबारक और दीनी विषयों पर बेशुमार किताबें शाया हो चुकी हैं। बल्कि अगर यह कहा जाये कि आज़ाद हिन्दुस्तान में हर इल्म व फ़न के अन्दर जिस क़द्र किताबें **फ़रीद बुक डिपो देहली** को प्रकाशित करने का सौभाग्य नसीब हुआ है उतना किसी और इदारे के हिस्से में नहीं आया तो यह बेजा न होगा। कोई इदारा फ़रीद बुक डिपो के मुक़ाबले में पेश नहीं किया जा सकता। यह सब कुछ अल्लाह के फ़ज़्ल व करम और उसकी इनायतों का फल है।

फ़रीद बुक डिपो देहली ने उर्दू, अरबी, फ़ारसी, गुजराती, हिन्दी और बंगाली अनेक भाषाओं में किताबें पेश करके एक नया रिकॉर्ड बनाया है। हिन्दी ज़बान में अनेक किताबें इदारे से शाया हो चुकी हैं। हिन्दी भाषा हमारी मुल्की ज़बान है। पढ़ने वालों की माँग और तलब देखते हुए तफ़सीरे क़ुरआन के उस अहम ज़ख़ीरे को हिन्दी ज़बान में लाने का फ़ैसला किया गया जो पिछले कई दशकों से इल्मी जगत में धूम मचाये हुए है। मेरी मुराद **तफ़सीर मआरिफ़ुल-क़ुरआन** से है। इस तफ़सीर के परिचय की आवश्यकता नहीं, दुनिया भर में यह एक मोतबर और विश्वसनीय तफ़सीर मानी जाती है।

मौलाना मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी ने फ़रीद बुक डिपो के लिये बहुत सी मुफ़ीद और कारामद किताबों का हिन्दी में तर्जुमा किया है। हज़रत मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद तक़ी उस्मानी के **इस्लाही ख़ुतबात** की 15 जिल्दें और **तफ़सीर तौज़ीहुल-क़ुरआन** उन्होंने हिन्दी में मुन्तक़िल की हैं जो इदारे से छपकर मक़बूल हो चुकी हैं। उन्हीं से यह काम करने का आग्रह किया गया जिसे उन्होंने क़ुबूल कर लिया और अब अल्हम्दु लिल्लाह यह शानदार तफ़सीर आपके हाथों में पहुँच रही है। हिन्दी ज़बान में क़ुरआनी ख़िदमत की यह अहम कड़ी आपके सामने है। उम्मीद है कि आपको पसन्द आयेगी और क़ुरआन पाक के पैग़ाम को समझने और उसको आम करने में एक अहम रोल अदा करेगी।

मैं अल्लाह करीम की बारगाह में दुआ करता हूँ कि वह इस ख़िदमत को क़ुबूल फ़रमाये और हमारे लिये इसे ज़ख़ीरा-ए-आख़िरत और रहमत व बरकत का सबब बनाये आमीन।

ख़ादिम-ए-क़ुरआन

मुहम्मद नासिर ख़ान

मैनेजिंग डायरेक्टर, फ़रीद बुक डिपो, देहली

अनुवादक की ओर से

الحمد لله رب العالمين. والصلوة والسلام على رسوله الكريم. وعلى آله وصحبه اجمعين.

برحمتك يا ارحم الراحمين.

तमाम तारीफ़ों की असल हक़दार अल्लाह तआला की पाक ज़ात है जो तमाम जहानों की पालनहार है। वह बेहद मेहरबान और बहुत ही ज़्यादा रहम करने वाला है। और बेशुमार दुरूद व सलाम हों उस ज़ाते पाक पर जो अल्लाह तआला की तमाम मख़्लूक़ में सब से बेहतर है, यानी हमारे आक़ा व सरदार हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम। और आपकी आल पर और आपके सहाबा किराम पर और आपके तमाम पैरोकारों पर।

अल्लाह करीम का बेहद फ़ज़्ल व करम है कि उसने मुझ नाचीज़ को अपने पाक कलाम की एक और ख़िदमत की तौफ़ीक़ बख़्शी। उसकी ज़ात तमाम ख़ूबियों, कमालात, तारीफ़ों और बन्दगी की हक़दार है।

इससे पहले सन् 2003 ईसवी में नाचीज़ ने **हकीमुल-उम्मत हज़रत मौलाना अशरफ़ अली थानवी रह.** का तर्जुमा हिन्दी भाषा में पेश किया जिसको काफ़ी मक़बूलियत मिली, उसके बाद **तफ़सीर इब्ने क़सीर मुकम्मल** हिन्दी भाषा में पेश करने की सआदत नसीब हुई, जो रमज़ान (अगस्त 2011) में प्रकाशित होकर मन्ज़रे आम पर आ चुकी है। इसके अलावा **फ़रीद बुक डिपो** ही से मौजूदा ज़माने के मशहूर आलिम **शैख़ुल-इस्लाम हज़रत मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद तक़ी उस्मानी** दामत बरकातुहुम की मुख़्तसर तफ़सीर **तौज़ीहुल-क़ुरआन** शाया होकर पाठकों तक पहुँच रही है।

उर्दू भाषा में जो मक़बूलियत क़ुरआनी तफ़सीरों में तफ़सीर मआरिफ़ुल-क़ुरआन के हिस्से में आयी शायद ही कोई तफ़सीर उस मक़ाम तक पहुँची हो। यह तफ़सीर हज़ारों की संख्या में हर साल छपती और पढ़ने वालों तक पहुँचती है, और यह सिलसिला तक़रीबन चालीस सालों से चल रहा है मगर आज तक कोई तफ़सीर इतनी मक़बूलियत हासिल नहीं कर सकी।

हिन्द महाद्वीप की जानी-मानी इल्मी शख़्सियत **हज़रत मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी** साहिब देवबन्दी (मुफ़्ती-ए-आज़म पाकिस्तान) की यह तफ़सीर क़ुरआनी तफ़सीरों में एक बड़ा क़ीमती सरमाया है। दिल चाहता था कि हिन्दी जानने वाले हज़रात तक भी यह उलूम और क़ुरआनी मतालिब पहुँचें मगर काम इतना बड़ा और अहम था कि शुरू करने की हिम्मत न होती थी।

जो हज़रात इल्मी काम करते हैं उनको मालूम है कि एक ज़बान से दूसरी ज़बान में तर्जुमा करना कितना मुश्किल काम है, और सही बात तो यह है कि इस काम का पूरा हक़ अदा होना बहुत ही मुश्किल है। फिर भी मैंने कोशिश की है कि इबारत का मफ़्हूम व मतलब तर्जुमे में उतर आये। कहीं-कहीं ब्रेकिट बढ़ाकर भी इबारत को आसान बनाने की कोशिश की है। तर्जुमे में जहाँ तक संभव हुआ कोई छेड़छाड़ नहीं की गयी क्योंकि उलेमा-ए-मुहक़्क़िक़ीन ने इस तर्जुमे को इल्हामी तर्जुमा क़रार दिया है। जहाँ बहुत ही ज़रूरी महसूस हुआ वहाँ आसानी के लिये कोई लफ़्ज़ बदला गया या ब्रेकिट

के अन्दर मायनों को लिख दिया गया।

अरबी और फ़ारसी के शे'रों का मफ़हूम अगर मुसन्निफ़ की इबारत में आ गया है और हिन्दी पाठकों के लिये ज़रूरी न समझा तो कुछ अश्आर को निकाल दिया गया है, और जहाँ ज़रूरत समझी वहाँ अरबी, फ़ारसी शे'रों का तर्जुमा लिख दिया है। ऐसे मौक़ों पर अहक़र ने उस तर्जुमे के अपनी तरफ़ से होने की वज़ाहत कर दी है ताकि अगर तर्जुमा करने में ग़लती हुई हो तो उसकी निस्बत साहिबे तफ़सीर की तरफ़ न हो बल्कि उसे मुझ नाचीज़ की इल्मी कोताही गरदाना जाये।

हल्ले लुग़ात और क़िराअतों का इख़्तिलाफ़ चूँकि इल्मे तफ़सीर पर निगाह न रखने वाले, क़िराअतों के फ़न से ना-आशना और अरबी ग्रामर से नावाक़िफ़ शख़्स एक हिन्दी जानने वाले के लिये कोई फ़ायदे की चीज़ नहीं, बल्कि बहुत सी बार कम-इल्मी के सबब इससे उलझन पैदा हो जाती है लिहाज़ा तफ़सीर के इस हिस्से को हिन्दी अनुवाद में शामिल नहीं किया गया।

हिन्दी जानने वाले हज़रात के लिये यह हिन्दी तफ़सीर एक नायाब तोहफ़ा है। अगर ख़ुद अपने मुताले से वह इसे पूरी तरह न समझ सकें तब भी कम से कम इतना मौक़ा तो है कि किसी आलिम से सबक़न् सबक़न् इस तफ़सीर को पढ़कर लाभान्वित हो सकते हैं। जिस तरह उर्दू तफ़सीरें भी सिर्फ़ उर्दू पढ़ लेने से पूरी तरह समझ में नहीं आतीं बल्कि बहुत सी जगह किसी आलिम से रुजू करके पेश आने वाली मुश्किल को हल किया जाता है, इसी तरह अगर हिन्दी जानने वाले हज़रात पूरी तरह इस तफ़सीर से फ़ायदा न उठा पायें तो हिम्मत न हारें, हिन्दी की इस तफ़सीर के ज़रिये उन्हें क़ुरआन पाक के तालिब इल्म बनने का मौक़ा तो हाथ आ ही जायेगा। जो बात समझ में न आये वह किसी मोतबर आलिम से मालूम कर लें और इस तफ़सीरी तोहफ़े से अपनी इल्मी प्यास बुझायें। अल्लाह का शुक्र भेजिये कि आप तफ़सीर के तालिब इल्म बनने के अहल हो गये वरना उर्दू न जानने की हालत में तो आप इस मौक़े से भी मेहरूम थे।

फ़रीद बुक डिपो से मेरी वाबस्तगी पच्चीस सालों से है। इस दौरान बहुत सी किताबें लिखने, प्रूफ़ रीडिंग करने और हिन्दी में तर्जुमा करने का मुझ नाचीज़ को मौक़ा मिला है। इदारे के संस्थापक **जनाब मुहम्मद फ़रीद ख़ाँ मरहूम** से लेकर मौजूदा मालिक और मैनेजिंग डायरेक्टर **जनाब अल-हाज** मुहम्मद नासिर ख़ाँ तक सब ही की ख़ास इनायतें मुझ नाचीज़ पर रही हैं। मैंने इस इदारे के लिये बहुत सी किताबों का हिन्दी तर्जुमा किया है, हज़रत **मौलाना क़ारी मुहम्मद तैयब** साहिब मोहतमिम दारुल-उलूम देवबन्द की किताबों और मज़ामीन पर किया हुआ मेरा काम सात जिल्दों में इसी इदारे से प्रकाशित हुआ है, इसके अलावा **"मालूमात का समन्दर"** और **"तज़किरा अल्लामा मुहम्मद इब्राहीम बलियावी"** वग़ैरह किताबें भी यहीं से शाया हुई हैं। जो किताबें मैंने उर्दू से हिन्दी में इस इदारे के लिये की हैं उनकी तायदाद भी पचास से अधिक है, इसी सिलसिले में एक और कड़ी यह जुड़ने जा रही है।

इस तफ़सीर को उर्दू से मिलती-जुलती हिन्दी भाषा (यानी हिन्दुस्तानी ज़बान) में पेश करने की कोशिश की गयी, हिन्दी के संस्कृत युक्त अलफ़ाज़ से परहेज़ किया गया है। कोशिश यह की है कि नज़मूई तौर पर मज़मून का मफ़हूम व मतलब समझ में आ जाये। फिर भी अगर कोई लफ़्ज़ या किसी जगह का कोई मज़मून समझ में न आये तो उसको नोट करके किसी आलिम से मालूम कर लेना चाहिये।

इस तफ़सीर से फ़ायदा उठाने वालों से आजिज़ी और विनम्रता के साथ दरख़्वास्त है कि वे मुझ नाचीज़ के ईमान पर ख़ात्मे और दुनिया व आख़िरत में कामयाबी के लिये दुआ फ़रमायें। अल्लाह करीम इस ख़िदमत को मेरे माँ-बाप और उस्ताज़ों के लिये भी मग़फ़िरत का ज़रिया बनाये, आमीन।

आख़िर में बहुत ही आजिज़ी के साथ अपनी कम-इल्मी और सलाहियत के अभाव का एतिराफ़ करते हुए यह अर्ज़ है कि बेऐब अल्लाह तआला की ज़ात है। कोई भी इनसानी कोशिश ऐसी नहीं जिसके बारे में सौ फ़ीसद यक़ीन के साथ कहा जा सके कि उसके अन्दर कोई ख़ामी और कमी नहीं रह गयी है। मैंने भी यह एक मामूली कोशिश की है, अगर मुझे इसमें कोई कामयाबी मिली है तो यह महज़ अल्लाह तआला का फ़ज़्ल व करम, उसके पाक नबी हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के ज़रिये लाये हुए पैग़ाम (क़ुरआन व हदीस) की रोशनी का फ़ैज़, अपनी मादरे इल्मी दारुल-उलूम देवबन्द की निस्बत और मेरे असातिज़ा हज़रात की मेहनत का फल है, मुझ नाचीज़ का इसमें कोई कमाल नहीं। हाँ इन इल्मी जवाहर-पारों को समेटने, तरतीब देने और पेश करने में जो ग़लती, ख़ामी और कोताही हुई हो वह यक़ीनन मेरी कम-इल्मी और नाक़िस सलाहियत के सबब है। अहले नज़र हज़रात से गुज़ारिश है कि अपनी राय, मश्विरों और नज़र में आने वाली ग़लतियों व कोताहियों से मुत्तला फ़रमायें ताकि आईन्दा किये जाने वाले इल्मी कामों में उनसे लाभ उठाया जा सके। वस्सलाम

तालिबे दुआ

मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज़्नानवी

79, महमूद नगर, गली नम्बर 6, मुज़फ़्फ़र नगर (उ. प्र.) 251001

25 जनवरी 2012

फ़ोनः- 0131-2442408, 09456095608, 09012122788

E-mail: imranqasmialig@yahoo.com

बिस्मिल्लाहिर्रह्मानिर्रहीम

मुक़द्दिमा

क़ुरआनी उलूम और इल्मे तफ़सीर के बारे में

ज़रूरी मालूमात

अज़- मुहम्मद तक़ी उस्मानी

उस्ताज़े हदीस दारुल-उलूम कराची - 14

(पुत्र लेखक तफ़सीर- हज़रत मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहिब रहमतुल्लाहि अलैहि)

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

पेश-लफ़्ज़

वालिद माजिद हज़रत मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहिब मद्द ज़िल्लुहुम की तफ़सीर 'मआरिफ़ुल-क़ुरआन' को अल्लाह तआला ने अवाम व ख़्वास में असाधारण मक़बूलियत अता फ़रमाई, और जिल्दे अव्वल का पहला संस्करण हाथों हाथ ख़त्म हो गया। दूसरे संस्करण की छपाई के वक़्त हज़रत मुसन्निफ़ मद्द ज़िल्लुहुम ने पहली जिल्द पर मुकम्मल तौर से दोबारा नज़र डाली और उसमें काफ़ी तरमीम व इज़ाफ़ा अमल में आया। इसी के साथ हज़रते वाला की इच्छा थी कि दूसरी बार छपने के वक़्त पहली जिल्द के शुरू में क़ुरआनी उलूम और उसूले तफ़सीर से मुताल्लिक़ एक मुख़्तसर मुक़द्दिमा भी तहरीर फ़रमायें, ताकि तफ़सीर के मुताले (अध्ययन) से पहले पढ़ने वाले हज़रात उन ज़रूरी मालूमात से लाभान्वित हो सकें, लेकिन लगातार बीमारी और कमज़ोरी की बिना पर हज़रत के लिये बज़ाते ख़ुद मुक़द्दिमे का लिखना और तैयार करना मुश्किल था, चुनाँचे हज़रते वाला ने यह ज़िम्मेदारी अहक़र के सुपुर्द फ़रमाई।

अहक़र ने हुक्म के पालन में और इस सौभाग्य को प्राप्त करने के लिये यह काम शुरू किया तो यह मुक़द्दिमा बहुत लम्बा हो गया, और क़ुरआनी उलूम के विषय पर ख़ास मुफ़स्सल किताब की सूरत बन गई। इस पूरी किताब को 'मआरिफ़ुल-क़ुरआन' के शुरू में बतौर मुक़द्दिमा शामिल करना मुश्किल था, इसलिये हज़रत वालिद साहिब के इशारे और राय से अहक़र ने इस मुफ़स्सल किताब का ख़ुलासा तैयार किया और सिर्फ़ वे चीज़ें बाक़ी रखीं जिनका मुताला तफ़सीर मआरिफ़ुल-क़ुरआन के मुताला करने वाले के लिये ज़रूरी था, और जो एक आम पाठक के लिये दिलचस्पी का सबब हो सकती थी। उस बड़े मज़मून का यह ख़ुलासा 'मआरिफ़ुल-क़ुरआन' पहली जिल्द के इस संस्करण में मुक़द्दिमे के तौर पर शामिल किया जा रहा है, अल्लाह तआला इसे मुसलमानों के लिये नाफ़े और मुफ़ीद (लाभदायक) बनाये और इस नाचीज़ के लिये आख़िरत का ज़ख़ीरा साबित हो।

इन विषयों पर तफ़सीली इल्मी मबाहिस (बहसें) अहक़र की उस विस्तृत और तफ़सीली किताब में मिल सकेंगे जो इन्शा-अल्लाह तआला जल्द ही एक मुस्तक़िल किताब की सूरत में प्रकाशित होगी (अब यह किताब 'उलूमुल-क़ुरआन' के नाम से प्रकाशित हो चुकी है)। लिहाज़ा जो हज़रात तहक़ीक़ और तफ़सील के तालिब हों वे उस किताब की तरफ़ रुजू फ़रमायें। व मा तौफ़ीक़ी इल्ला बिल्लाह, अलैहि तवक्कलतु व इलैहि उनीब।

अहक़र

मुहम्मद तक़ी उस्मानी

दारुल-उलूम कोरंगी, कराची- 14

23 रबीउल-अव्वल 1394 हिजरी

मुक़द्दिमा

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ○

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ وَكَفٰى. وَسَلٰمٌ عَلٰى عِبَادِهِ الَّذِيْنَ اصْطَفٰى.

'वही' और उसकी हक़ीक़त

क़ुरआने करीम चूँकि सरवरे कायनात हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम पर वही के ज़रिये नाज़िल किया गया है, इसलिये सब से पहले वही के बारे में चन्द ज़रूरी बातें समझ लेनी चाहियें।

वही की ज़रूरत

हर मुसलमान जानता है कि अल्लाह तआला ने इनसान को इस दुनिया में आज़माईश के लिये भेजा है, और उसके ज़िम्मे कुछ फ़रीज़े (ज़िम्मेदारियाँ) आयद करके पूरी कायनात को इसकी ख़िदमत में लगा दिया है। लिहाज़ा दुनिया में आने के बाद इनसान के लिये दो काम करने ज़रूरी हैं- एक यह कि वह इस कायनात से और इसमें पैदा की हुई चीज़ों से ठीक-ठीक काम ले, और दूसरे यह कि इस कायनात को इस्तेमाल करते हुए अल्लाह तआला के अहकाम को मद्देनज़र रखे और कोई ऐसी हरकत न करे जो अल्लाह तबारक व तआला की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ हो।

इन दोनों कामों के लिये इनसान को "इल्म" की ज़रूरत है, इसलिये कि जब तक उसे यह मालूम न हो कि इस कायनात की हक़ीक़त क्या है? इसकी कौनसी चीज़ की क्या ख़ासियत है? इनसे किस तरह फ़ायदा उठाया जा सकता है? उस वक़्त तक वह दुनिया की कोई भी चीज़ अपने फ़ायदे के लिये इस्तेमाल नहीं कर सकता। साथ ही जब तक उसे यह मालूम न हो कि अल्लाह तआला की मर्ज़ी क्या है? वह कौनसे कामों को पसन्द और किनको नापसन्द फ़रमाता है? उस वक़्त तक उसके लिये अल्लाह तआला की मर्ज़ी के मुताबिक़ ज़िन्दगी गुज़ारना मुम्किन नहीं।

चुनाँचे अल्लाह तआला ने इनसान को पैदा करने के साथ-साथ तीन चीज़ें ऐसी पैदा की हैं जिनके ज़रिये उसे मज़कूरा बातों का इल्म हासिल होता रहे- एक इनसान के हवास, यानी आँख, कान, मुँह और हाथ-पाँव, दूसरे अक़्ल और तीसरे वही। चुनाँचे इनसान को बहुत सी बातें अपने हवास के ज़रिये मालूम हो जाती हैं, बहुत सी अक़्ल के ज़रिये, और जो बातें इन

दोनों ज़रियों (माध्यमों) से मालूम नहीं हो सकतीं उनका इल्म वही के ज़रिये अता किया जाता है।

इल्म के इन तीनों ज़रियों (वास्तों और माध्यमों) में तरतीब कुछ ऐसी है कि हर एक की एक ख़ास हद और काम का मख़्सूस दायरा है, जिससे आगे वह काम नहीं देता। चुनाँचे जो चीज़ें इनसान को अपने हवास से मालूम हो जाती हैं उनका इल्म केवल अक़्ल से नहीं हो सकता, जैसे एक दीवार को आँख से देखकर आपको यह इल्म हो जाता है कि उसका रंग सफ़ेद है, लेकिन अगर आप अपनी आँखों को बन्द करके सिर्फ़ अक़्ल की मदद से उस दीवार का रंग मालूम करना चाहें तो यह नामुम्किन है। इसी तरह जिन चीज़ों का इल्म अक़्ल के ज़रिये हासिल होता है वे सिर्फ़ हवास से मालूम नहीं हो सकतीं, जैसे आप सिर्फ़ आँखों से देखकर या हाथों से छूकर यह पता नहीं लगा सकते कि इस दीवार को किसी इनसान ने बनाया है, बल्कि इस नतीजे तक पहुँचने के लिये अक़्ल की ज़रूरत है।

ग़र्ज़ कि जहाँ तक पाँचों हवास काम देते हैं वहाँ तक अक़्ल कोई रहनुमाई नहीं करती, और जहाँ ये पाँचों ज़ाहिरी हवास जवाब दे देते हैं वहीं से अक़्ल का काम शुरू होता है। लेकिन इस अक़्ल की रहनुमाई भी ग़ैर-महदूद (असीमित) नहीं है, यह भी एक हद पर जाकर रुक जाती है। और बहुत सी बातें ऐसी हैं जिनका इल्म न हवास के ज़रिये हासिल हो सकता है और न अक़्ल के ज़रिये, जैसे उसी दीवार के बारे में यह मालूम करना कि इसको किस तरह इस्तेमाल करने से अल्लाह तआला राज़ी और किस तरह इस्तेमाल करने से नाराज़ होगा? यह न हवास के ज़रिये मुम्किन है न अक़्ल के ज़रिये, इस किस्म के सवालात का जवाब इनसान को देने के लिये जो ज़रिया अल्लाह तआला ने मुक़र्रर फ़रमाया है उसी का नाम "वही" है। और उसका तरीक़ा यह होता है कि अल्लाह तआला अपने बन्दों में से किसी को मुन्तख़ब फ़रमाकर (चुनकर) उसे अपना पैग़म्बर क़रार दे देता है और उस पर अपना कलाम नाज़िल फ़रमाता है, उसी कलाम को "वही" कहा जाता है।

इससे वाज़ेह हो गया कि वही इनसान के लिये इल्म का वह सब से आला और बुलन्द ज़रिया और माध्यम है जो उसे उसकी ज़िन्दगी से मुताल्लिक़ उन सवालात का जवाब मुहैया करता है जो अक़्ल और हवास के ज़रिये हल नहीं हो सकते, लेकिन उनका इल्म हासिल करना उसके लिये ज़रूरी है। इससे यह भी वाज़ेह हो जाता है कि सिर्फ़ अक़्ल और अनुभव इनसान की रहनुमाई के लिये काफ़ी नहीं, बल्कि उसकी हिदायत के लिये अल्लाह की वही एक लाज़िमी ज़रूरत है, और चूँकि बुनियादी तौर पर वही की ज़रूरत पेश ही उस जगह आती है जहाँ अक़्ल काम नहीं देती इसलिये यह ज़रूरी नहीं है कि वही की हर बात का इल्म व जानकारी अक़्ल से हो ही जाये, बल्कि जिस तरह किसी चीज़ का रंग मालूम करना अक़्ल का काम नहीं बल्कि हवास का काम है, इसी तरह बहुत से दीनी अक़ीदों का इल्म अता करना भी अक़्ल के बजाय वही का काम है, और उनके इदराक (समझने और जानने) के लिये सिर्फ़ अक़्ल पर भरोसा करना दुरुस्त नहीं।

जो शख़्स (अल्लाह की पनाह) ख़ुदा के वजूद ही का क़ायल न हो उससे तो वही के मसले पर बात करना बिल्कुल बेफ़ायदा है, लेकिन जो शख़्स अल्लाह तआला के वजूद और उसकी कामिल क़ुदरत पर ईमान रखता है उसके लिये वही की अक़्ली ज़रूरत, उसकी संभावना और वास्तविक वजूद को समझना कुछ मुश्किल नहीं। अगर आप इस बात पर ईमान रखते हैं कि यह कायनात एक क़ादिरे मुतलक़ ने पैदा की है, वही इसके संगठित और मज़बूत निज़ाम को अपनी हिक्मते बालिग़ा से चला रहा है, और उसी ने इनसान को किसी ख़ास मक़सद के तहत यहाँ भेजा है, तो फिर यह कैसे मुम्किन है कि उसने इनसान को पैदा करने के बाद उसे बिल्कुल अंधेरे में छोड़ दिया हो और उसे यह तक न बताया हो कि वह क्यों इस दुनिया में आया है? यहाँ उसके ज़िम्मे क्या फ़राईज़ हैं? उसकी मन्ज़िले मक़सूद क्या है? और वह किस तरह अपने ज़िन्दगी के मक़सद को हासिल कर सकता है? क्या कोई शख़्स जिसके होश व हवास सलामत हों ऐसा कर सकता है कि अपने किसी नौकर को एक ख़ास मक़सद के तहत किसी सफ़र पर भेज दे और उसे चलते वक़्त न सफ़र का मक़सद बताये और न बाद में किसी पैग़ाम के ज़रिये उस पर यह वाज़ेह करे कि उसे किस काम के लिये भेजा गया है और सफ़र के दौरान उसकी ड्यूटी क्या होगी? जब एक मामूली अक़्ल का इनसान भी ऐसी हरकत नहीं कर सकता तो आख़िर उस ख़ुदावन्दे क़ुद्दूस के बारे में यह तसव्वुर कैसे किया जा सकता है जिसकी हिक्मते बालिग़ा से कायनात का यह सारा निज़ाम चल रहा है। यह आख़िर कैसे मुम्किन है कि जिस ज़ात ने चाँद, सूरज, आसमान, ज़मीन, सितारों और सय्यारों का ऐसा अक़्लों को हैरान कर देने वाला निज़ाम पैदा किया हो, वह अपने बन्दों तक पैग़ाम पहुँचाने का कोई ऐसा इन्तिज़ाम भी न कर सके जिसके ज़रिये इनसानों को उनके ज़िन्दगी के मक़सद से मुताल्लिक़ हिदायत दी जा सकें? अगर अल्लाह तआला की हिक्मते बालिग़ा पर ईमान है तो फिर यह भी मानना पड़ेगा कि उसने अपने बन्दों को अंधेरे में नहीं छोड़ा, बल्कि उनकी रहनुमाई के लिये कोई बाक़ायदा निज़ाम (सिस्टम) ज़रूर बनाया है, बस रहनुमाई के इसी बाक़ायदा निज़ाम का नाम **वही व रिसालत** है।

इससे साफ़ वाज़ेह हो जाता है कि "वही" महज़ एक दीनी एतिक़ाद ही नहीं बल्कि एक अक़्ली ज़रूरत है, जिसका इनकार दर हक़ीक़त अल्लाह तआला की हिक्मते बालिग़ा का इनकार है।

हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम पर वही नाज़िल होने के तरीक़े

वही व रिसालत का यह पवित्र सिलसिला सरकारे दो आलम सल्लल्लाहु अलैहि व

सल्लम पर ख़त्म हो गया, अब किसी इनसान पर न वही नाज़िल होगी और न इसकी ज़रूरत है। नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम पर मुख़्तलिफ़ (विभिन्न) तरीक़ों से वही नाज़िल होती थी। सही बुख़ारी की एक हदीस में हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु अन्हा फ़रमाती हैं कि एक मर्तबा हज़रत हारिस बिन हिशाम रज़ियल्लाहु अन्हु ने आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से पूछा कि आप पर वही किस तरह आती है? तो आपने फ़रमाया कि कभी तो मुझे घंटी की सी आवाज़ सुनाई देती है और वही की यह सूरत मेरे लिये सब से ज़्यादा सख़्त होती है। फिर जब यह सिलसिला ख़त्म होता है तो जो कुछ उस आवाज़ ने कहा होता है वह मुझे याद हो चुका होता है, और कभी फ़रिश्ता मेरे सामने एक मर्द की सूरत में आ जाता है। (सही बुख़ारी जिल्द 1 पेज 2)

इस हदीस में आपने "वही" की आवाज़ को घन्टियों की आवाज़ से जो तश्बीह दी है, शैख़ मुहियुद्दीन इब्ने अरबी रहमतुल्लाहि अलैहि ने इसका मतलब यह बयान किया है कि एक तो वही की आवाज़ घंटी की तरह लगातार होती है और बीच में टूटती नहीं, दूसरे घंटी जब निरन्तर बजती है तो उमूमन सुनने वाले को उसकी आवाज़ की दिशा मुतैयन करना मुश्किल होता है, क्योंकि उसकी आवाज़ हर तरफ़ से आती हुई महसूस होती है और कलामे इलाही की भी यह ख़ुसूसियत है कि उसकी कोई एक दिशा नहीं होती, बल्कि हर दिशा से आवाज़ सुनाई देती है। इस कैफ़ियत का सही इदराक (इल्म व अन्दाज़ा) तो बग़ैर अनुभव के मुम्किन नहीं, लेकिन इस बात को आम ज़ेहनों से क़रीब करने के लिये आपने इसे घन्टियों की आवाज़ से तश्बीह दी है। (फ़ैज़ुल-बारी जिल्द 1 पेज 19, 20)

जब इस तरीक़े से आप पर वही नाज़िल होती तो आप पर बहुत ज़्यादा बोझ पड़ता था। हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु अन्हा इसी हदीस के आख़िर में फ़रमाती हैं कि मैंने सख़्त जाड़ों के दिन में आप पर वही नाज़िल होते हुए देखी है, ऐसी सर्दी में भी जब वही का सिलसिला ख़त्म होता तो आपकी मुबारक पेशानी पसीने से तर हो चुकी होती थी। एक और रिवायत में हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु अन्हा फ़रमाती हैं कि जब आप पर वही नाज़िल होती तो आपका साँस रुकने लगता, चेहरा-ए-अनवर का रंग बदलकर खजूर की शाख़ की तरह ज़र्द (पीला) पड़ जाता, सामने के दाँत सर्दी से कपकपाने लगते और आपको इतना पसीना आता कि उसके क़तरे मोतियों की तरह ढलकने लगते थे। (अल-इतक़ान जिल्द 1 पेज 46)

वही की इस कैफ़ियत में कई बार इतनी शिद्दत पैदा हो जाती कि आप जिस जानवर पर उस वक़्त सवार होते वह आपके बोझ से दबकर बैठ जाता। और एक मर्तबा आपने अपना सर मुबारक हज़रत ज़ैद बिन साबित रज़ियल्लाहु अन्हु की रान पर रखा हुआ था कि उसी हालत में वही नाज़िल होनी शुरू हो गई, उससे हज़रत ज़ैद रज़ियल्लाहु अन्हु की रान पर इतना बोझ पड़ा कि वह टूटने लगी। (ज़ादुल-मआद जिल्द 1 पेज 18, 19)

कई बार उस वही की हल्की-हल्की आवाज़ दूसरों को भी महसूस होती थी। हज़रत

उमर फ़ारूक़ रज़ियल्लाहु अन्हु फ़रमाते हैं कि जब आप पर वही नाज़िल होती तो आपके चेहरा-ए-अनवर के क़रीब शहद की मक्खियों की भिनभिनाहट जैसी आवाज़ सुनाई देती थी। (तबवीब मुस्नद अहमद, किताब सीरते नबविया जिल्द 20 पेज 212)

वही की दूसरी सूरत यह थी कि फ़रिश्ता किसी इनसानी शक्ल में आपके पास आकर अल्लाह तआला का पैग़ाम पहुँचा देता था। ऐसे मौक़े पर उमूमन हज़रत जिब्राईल अलैहिस्सलाम मशहूर सहाबी हज़रत दहया कलबी रज़ियल्लाहु अन्हु की सूरत में तशरीफ़ लाया करते थे, अलबत्ता कभी-कभी किसी दूसरी सूरत में भी तशरीफ़ लाये हैं। बहरहाल! जब हज़रत जिब्राईल अलैहिस्सलाम इनसानी शक्ल में वही लेकर आते तो वही नाज़िल होने की यह सूरत आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के लिये सब से आसान होती थी।

(अल-इतक़ान जिल्द 1 पेज 46)

वही की तीसरी सूरत यह थी कि हज़रत जिब्राईल अलैहिस्सलाम किसी इनसान की शक्ल इख़्तियार किये बग़ैर अपनी असली सूरत में दिखाई देते थे, लेकिन ऐसा आपकी तमाम उम्र में सिर्फ़ तीन बार हुआ है- एक मर्तबा उस वक़्त जब आपने ख़ुद हज़रत जिब्राईल अलैहिस्सलाम को उनकी असली शक्ल में देखने की इच्छा ज़ाहिर फ़रमाई थी, दूसरी मर्तबा मेराज में और तीसरी बार नुबुव्वत के बिल्कुल शुरू के ज़माने में मक्का मुकर्रमा के मक़ाम अजयाद पर। पहले दो वाक़िआत तो सही सनद से साबित हैं, अलबत्ता यह आख़िरी वाक़िआ सनद के एतिबार से कमज़ोर होने की वजह से मशकूक (संदिग्ध) है।

(फ़तहुल-बारी जिल्द 1 पेज 18, 19)

चौथी सूरत डायरेक्ट और बिना किसी वास्ते के अल्लाह तबारक व तआला से हम-कलामी (बात करने) की है, यह सम्मान और गौरव नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को जागने की हालत में सिर्फ़ एक बार, यानी मेराज के वक़्त हासिल हुआ है, अलबत्ता एक मर्तबा ख़्वाब में भी आप अल्लाह तआला से हम-कलाम हुए हैं।

(अल-इतक़ान जिल्द 1 पेज 46)

वही की पाँचवीं सूरत यह थी कि हज़रत जिब्राईल अलैहिस्सलाम किसी भी सूरत में सामने आये बग़ैर आपके दिल मुबारक में कोई बात डाल देते थे, इसे इस्तिलाह में "नफ़्स फ़िरौज़" कहते हैं। (अल-इतक़ान जिल्द 1 पेज 46)

क़ुरआन के नाज़िल होने का इतिहास

क़ुरआने करीम दर असल अल्लाह का कलाम है, इसलिये अज़ल (पहले दिन) से "लौहे-महफ़ूज़" में मौजूद है। क़ुरआने करीम का इरशाद है:

بَلْ هُوَ قُرْاٰنٌ مَّجِيْدٌ ۝ فِيْ لَوْحٍ مَّحْفُوْظٍ ۝ (۸۵:۲۱،۲۲)

(बल्कि यह क़ुरआन मजीद है, लौहे-महफ़ूज़ में) फिर लौहे-महफ़ूज़ से इसका नुज़ूल दो

मर्तबा हुआ है, एक मर्तबा यह पूरे का पूरा दुनिया वाले आसमान के बैतुल-इज़्ज़त में नाज़िल कर दिया गया था। बैतुल-इज़्ज़त (जिसे बैतुल-मामूर भी कहते हैं) काबा शरीफ़ की बिल्कुल सीध में आसमान पर फ़रिश्तों की इबादत का मक़ाम है, यह नुज़ूल (उतरना) शबे-क़द्र में हुआ था। फिर दूसरी मर्तबा नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम पर थोड़ा थोड़ा करके ज़रूरत के अनुसार नाज़िल किया जाता रहा, यहाँ तक कि तेईस साल में इसकी तकमील हुई। नुज़ूले क़ुरआन (क़ुरआन उतरने) की ये दो सूरतें खुद क़ुरआने करीम के अन्दाज़े बयान से भी वाज़ेह हैं, इसके अलावा इमाम नसाई, इमाम बैहक़ी और इमाम हाकिम रह. वग़ैरह ने हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास रज़ियल्लाहु अन्हु से कई रिवायतें नक़ल की हैं जिनका खुलासा यह है कि क़ुरआने करीम का पहला नुज़ूल एक ही बार में दुनिया वाले आसमान पर हुआ और दूसरी बार यह थोड़ा-थोड़ा नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम पर नाज़िल हुआ। (इतक़ान जिल्द 1 पेज 41)

क़ुरआने करीम को पहली मर्तबा दुनिया वाले आसमान पर नाज़िल करने की हिक्मत इमाम अबू शामा रह. ने यह बयान की है कि इससे क़ुरआने करीम की ऊँची शान को ज़ाहिर करना मक़सूद था और फ़रिश्तों को यह बात बतानी थी कि यह अल्लाह की आख़िरी किताब है जो ज़मीन वालों की हिदायत के लिये उतारी जाने वाली है।

शैख़ ज़ुरक़ानी रह. ने यह नुक्ता भी बयान किया है कि इस तरह दो मर्तबा उतारने से यह भी जताना मक़सूद था कि यह किताब हर शक व शुब्हे से ऊपर है, और नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के दिल मुबारक के अलावा यह दो जगह और भी महफ़ूज़ है- एक लौहे-महफ़ूज़ में और दूसरे बैतुल-इज़्ज़त में। (मनाहिलुल-इरफ़ान 1, 39) वल्लाहु आलम।

इस पर तक़रीबन इत्तिफ़ाक़ (सब की सहमति) है कि क़ुरआने करीम जो थोड़ा-थोड़ा करके नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के दिल मुबारक पर उतरा इसका आग़ाज़ उस वक़्त हुआ जबकि आपकी उम्र चालीस साल थी। इस उतरने की शुरूआत भी सही क़ौल के मुताबिक़ शबे-क़द्र में हुई है। लेकिन यह रात रमज़ान की कौनसी तारीख़ थी? इस बारे में कोई यक़ीनी बात नहीं कही जा सकती, कुछ रिवायतों से रमज़ान की सत्रहवीं, कुछ से उन्नीसवीं और कुछ से सत्ताईसवीं रात मालूम होती है। (तफ़सीर इब्ने जरीर जिल्द 10 पेज 7)

सबसे पहले नाज़िल होने वाली आयत

सही क़ौल यह है कि आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम पर क़ुरआने करीम की सबसे पहली जो आयतें उतरीं वो सूरः अलक़ की शुरू की आयतें हैं। सही बुख़ारी में हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु अन्हा इसका वाक़िआ यह बयान फ़रमाती हैं कि आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम पर वही के उतरने की शुरूआत तो सच्चे ख़्वाबों से हुई थी, उसके बाद आपको तन्हाई में इबादत करने का शौक़ पैदा हुआ, और उस दौरान आप ग़ारे-हिरा में

कई-कई रातें गुज़ारते और इबादत में मशग़ूल रहते थे, यहाँ तक कि एक दिन उसी गार (गुफा) में आपके पास अल्लाह तआला की तरफ़ से फ़रिश्ता आया और उसने सब से पहले यह बात कही कि "इक़रअ्" (यानी पढ़ो) हुज़ूरे पाक ने फ़रमाया- "मैं पढ़ा हुआ नहीं हूँ" इसके बाद ख़ुद हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने वाक़िआ बयान किया कि मेरे इस जवाब पर फ़रिश्ते ने मुझे पकड़ा और मुझे इस ज़ोर से भींचा कि मुझ पर मशक़्क़त की इन्तिहा हो गई, फिर उसने मुझे छोड़ दिया और दोबारा कहा कि "इक़रअ्" मैंने जवाब दिया कि "मैं पढ़ा हुआ नहीं हूँ" फ़रिश्ते ने मुझे फिर पकड़ा और दोबारा इस ज़ोर से भींचा कि मुझ पर मशक़्क़त की इन्तिहा हो गई, फिर उसने मुझे छोड़कर कहा कि "इक़रअ्" मैंने जवाब दिया कि "मैं पढ़ा हुआ नहीं हूँ" इस पर उसने मुझे तीसरी बार पकड़ा और भींचकर छोड़ दिया। फिर कहाः

اِقْرَاْ بِاسْمِ رَبِّكَ الَّذِىْ خَلَقَ ○ خَلَقَ الْاِنْسَانَ مِنْ عَلَقٍ ○ اِقْرَاْ وَرَبُّكَ الْاَكْرَمُ ○ الَّذِىْ عَلَّمَ بِالْقَلَمِ ○ عَلَّمَ الْاِنْسَانَ مَالَمْ يَعْلَمْ ○

"पढ़ो अपने परवर्दिगार के नाम से जिसने पैदा किया। जिसने इनसान को जमे हुए ख़ून से पैदा किया। पढ़ो, और तुम्हारा परवर्दिगार सबसे ज़्यादा करम वाला है। जिसने क़लम से तालीम दी। इनसान को उस बात की तालीम दी जो वह नहीं जानता था।"

ये आप पर नाज़िल होने वाली पहली आयतें थीं। उसके बाद तीन साल तक वही का सिलसिला बन्द रहा, उसी ज़माने को "फ़त्रते वही" का ज़माना कहते हैं। फिर तीन साल के बाद वही फ़रिश्ता जो ग़ारे-हिरा में आया था, आपको आसमान व ज़मीन के बीच दिखाई दिया और उसने सूरः मुद्दस्सिर की शुरू की आयतें आपको सुनाईं, उसके बाद वही का सिलसिला जारी हो गया।

मक्की और मदनी आयतें

आपने क़ुरआने करीम की सूरतों के उनवान में देखा होगा कि किसी सूरत के साथ "मक्की" और किसी के साथ "मदनी" लिखा होता है। इसका सही मफ़्हूम समझ लेना ज़रूरी है। मुफ़स्सिरीन की इस्तिलाह में "मक्की आयत" का मतलब वह आयत है जो आपके हिजरत के मक़सद से मदीना तय्यिबा पहुँचने से पहले-पहले नाज़िल हुई, और "मदनी आयत" का मफ़्हूम यह है कि वह आपके मदीना पहुँचने के बाद नाज़िल हुई। कुछ लोग "मक्की" का मतलब यह समझते हैं कि वह शहर मक्का में नाज़िल हुई, और "मदनी" का यह कि वह शहर मदीना में उतरी, लेकिन यह मतलब दुरुस्त नहीं, इसलिये कि कई आयतें ऐसी हैं जो शहर मक्का में नाज़िल नहीं हुई लेकिन चूँकि हिजरत से पहले नाज़िल हो चुकी थीं इसलिये उन्हें "मक्की" कहा जाता है। चुनाँचे जो आयतें मिना, अरफ़ात या मेराज के सफ़र के दौरान नाज़िल हुई वे भी "मक्की" कहलाती हैं, यहाँ तक

कि जो आयतें हिजरत के सफ़र के दौरान मदीना के रास्ते में नाज़िल हुईं उनको भी "मक्की" कहा जाता है। इसी तरह बहुत सी आयतें ऐसी हैं जो शहर मदीना में नाज़िल नहीं हुईं मगर वे "मदनी" हैं, चुनाँचे हिजरत के बाद आपको बहुत से सफ़र पेश आये जिनमें आप मदीना तय्यिबा से सैंकड़ों मील दूर भी तशरीफ़ ले गये, उन तमाम मक़ामात पर नाज़िल होने वाली आयतें "मदनी" ही कहलाती हैं, यहाँ तक कि उन आयतों को भी "मदनी" कहा जाता है जो मक्का फ़तह होने या सुलह हुदैबिया के मौक़े पर ख़ास शहर मक्का या उससे मिले हुए इलाक़ों में नाज़िल हुईं। चुनाँचे क़ुरआन पाक की यह आयतः

إِنَّ اللّٰهَ يَأْمُرُكُمْ أَنْ تُؤَدُّوا الْأَمٰنٰتِ إِلٰى أَهْلِهَا.... (٥٨:٤)

"मदनी" है, हालाँकि यह मक्का मुकर्रमा में नाज़िल हुई।

(अल-बुरहान जिल्द 1 पेज 188, व मनाहिलुल-इरफ़ान जिल्द 1 पेज 188)

फिर कुछ सूरतें तो ऐसी हैं कि वे पूरी की पूरी मक्की या पूरी की पूरी मदनी हैं, जैसे सूरः मुद्दस्सिर पूरी मक्की है, और सूरः आले इमरान पूरी मदनी, लेकिन बाज़ मर्तबा ऐसा भी हुआ है कि पूरी सूरत मक्की है लेकिन उसमें एक या चन्द आयतें मदनी भी आ गई हैं, और बाज़ मर्तबा इसके उलट भी हुआ है, जैसे सूरः आराफ़ मक्की है लेकिन उसमेंः

وَسْئَلْهُمْ عَنِ الْقَرْيَةِ الَّتِيْ كَانَتْ حَاضِرَةَ الْبَحْرِ.

से लेकरः

وَإِذْ أَخَذَ رَبُّكَ مِنْ بَنِيْ آدَمَ..... الخ

तक की आयतें मदनी हैं (सूरत 7 आयत 163)। इसी तरह सूरः हज मदनी है लेकिन इसमें चार आयतें यानीः

وَمَا أَرْسَلْنَا مِنْ قَبْلِكَ مِنْ رَّسُوْلٍ وَّلَا نَبِيٍّ إِلَّا إِذَا تَمَنّٰى.

से लेकरः

عَذَابُ يَوْمٍ عَقِيْمٍ.

तक मक्की हैं। (सूरत 22 आयत 52-55)

इससे यह भी वाज़ेह हो जाता है कि किसी सूरत का मक्की या मदनी होना उमूमन उसकी अक्सर आयतों के एतिबार से होता है, और अक्सर ऐसा होता था कि जिस सूरत की शुरू की आयतें हिजरत से पहले नाज़िल हो गईं उसे मक्की क़रार दे दिया गया, अगरचे बाद में उसकी कुछ आयतें हिजरत के बाद नाज़िल हुई हों। (मनाहिलुल-इरफ़ान जिल्द 1 पेज 192)

मक्की व मदनी आयतों की ख़ुसूसियात

उलेमा-ए-तफ़सीर ने मक्की और मदनी सूरतों के अन्दर ग़ौर-फ़िक्र और तहक़ीक़ व

तलाश करके उनकी कुछ ऐसी ख़ुसूसियात (विशेषतायें) बयान फ़रमाई हैं जिनसे पहली नज़र में वह मालूम हो जाता है कि यह सूरत मक्की है या मदनी। उनमें से कुछ ख़ुसूसियात एक मुस्तक़िल क़ायदे की हैसियत रखती हैं और कुछ में अधिकता का एतिबार है। मुस्तक़िल क़ायदे ये हैं:

1. हर वह सूरत जिसमें लफ़्ज़ 'कल्ला' (हरगिज़ नहीं) आया है, वह मक्की है। यह लफ़्ज़ 15 सूरतों में 33 मर्तबा इस्तेमाल हुआ है, और ये सारी आयतें क़ुरआने करीम के आख़िरी आधे हिस्से में हैं।

2. हर वह सूरत जिसमें (हनफ़ी मस्लक के मुताबिक़) कोई सज्दे की आयत आई है वह मक्की है।

3. सूरः ब-क़रह के अलावा हर वह सूरत जिसमें हज़रत आदम और शैतान का वाक़िआ ज़िक्र हुआ है, वह मक्की है।

नोटः- यह क़ायदा किताब 'अल-इतक़ान' वग़ैरह से लिया गया है और यह उस क़ौल के मुताबिक़ तो दुरुस्त है जिसके एतिबार से सूरः हज मक्की है, लेकिन अगर उसे मदनी क़रार दिया जाये जैसा कि कुछ सहाबा व ताबिईन हज़रात से मन्क़ूल है तो सूरः हज इस क़ायदे से अलग होगी।

मुहम्मद तक़ी उस्मानी

4. हर वह सूरत जिसमें जिहाद की इजाज़त या उसके अहकाम मज़कूर हैं, मदनी है।

5. हर वह आयत जिसमें मुनाफ़िक़ों का ज़िक्र आया है, मदनी है।

और निम्नलिखित ख़ुसूसियतें उमूनी और अक्सरी हैं, यानी कभी-कभी इनके ख़िलाफ़ भी हो जाता है लेकिन अक्सर व बेशतर ऐसा ही होता है।

1. मक्की सूरतों में उमूमन 'या अय्युहन्नासु' (ऐ लोगो!) के अलफ़ाज़ से ख़िताब किया गया है और मदनी सूरतों में 'या अय्युहल्लज़ी-न आमनू' (ऐ ईमान वालो!) के अलफ़ाज़ से।

2. मक्की आयतें और सूरतें छोटी-छोटी और मुख़्तसर हैं और मदनी आयतें व सूरतें लम्बी और तफ़सीली हैं।

3. मक्की सूरतें ज़्यादातर तौहीद, रिसालत और आख़िरत के साबित करने, मौत के बाद उठने और क़ियामत के मन्ज़र बयान करने, नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को सब्र व तसल्ली की तालीम व हिदायत और पिछली उम्मतों के वाक़िआत पर आधारित हैं और उनमें अहकाम व क़ानून कम बयान हुए हैं, इसके विपरीत मदनी सूरतों में ख़ानदानी और सामाजिक क़ानून, जिहाद व क़िताल के अहकाम और सज़ायें व फ़राईज़ बयान किये गये हैं।

4. मक्की सूरतों में ज़्यादातर मुक़ाबला बुतपरस्तों से है और मदनी सूरतों में अहले किताब (यहूदियों व ईसाईयों) और मुनाफ़िक़ों से।

5. मक्की सूरतों का अन्दाज़े बयान ज़्यादा अज़मत वाला व शाहाना है, उसमें मिसालें

और इशारे ज़्यादा हैं, और अलफ़ाज़ का ज़ख़ीरा बहुत फैला हुआ है, इसके विपरीत मदनी सूरतों का अन्दाज़ उनकी तुलना में सादा है।

मक्की और मदनी सूरतों के अन्दाज़ व उस्लूब में यह फ़र्क़ दर असल हालात, माहौल और मुख़ातबों के इख़्तिलाफ़ (भिन्न होने) की वजह से पैदा हुआ है। मक्की ज़िन्दगी में मुसलमानों का वास्ता चूँकि ज़्यादातर अरब के बुतपरस्तों (मूर्ति पूजकों) से था और कोई इस्लामी राज्य वजूद में नहीं आया था, इसलिये उस दौर में ज़्यादा ज़ोर अक़ीदों के सही करने, अख़्लाक़ के सुधार, बुतपरस्तों की दलील के साथ तरदीद और क़ुरआने करीम की सबसे अलग और दूसरों को आजिज़ करने देने वाली शान के इज़हार पर दिया गया। इसके विपरीत मदीना तय्यिबा में एक इस्लामी रियासत (राज्य) वजूद में आ चुकी थी, लोग गिरोह के गिरोह इस्लाम के साये तले आ रहे थे, इल्मी सतह पर बुतपरस्ती का ग़लत व झूठा होना सब पर ज़ाहिर हो चुका था और सारा का सारा नज़रियाती मुक़ाबला अहले किताब (यहूदी व ईसाईयों) से था, इसलिये यहाँ अहकाम व क़वानीन और हुदूद व फ़राईज़ की तालीम और अहले किताब की तरदीद पर ज़्यादा तवज्जोह दी गई और इसी के मुनासिब अन्दाज़े बयान इख़्तियार किया गया।

क़ुरआने करीम का थोड़ा-थोड़ा उतरना

पीछे आ चुका है कि नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम पर क़ुरआने करीम अचानक और एक ही दफ़ा में नाज़िल नहीं हुआ, बल्कि थोड़ा-थोड़ा करके तक़रीबन तेईस साल में उतारा गया है। कई बार हज़रत जिब्राईल अलैहिस्सलाम एक छोटी सी आयत बल्कि आयत का कोई एक टुकड़ा लेकर भी तशरीफ़ ले आते और कई बार कई-कई आयतें एक ही वक़्त में नाज़िल हो जातीं। क़ुरआने करीम का सबसे छोटा हिस्सा जो मुस्तक़िल तौर पर नाज़िल हुआ वह:

غَيْرُ أُولِي الضَّرَرِ

'ग़ैरु उलिज़्ज़-रर' (यानी सूरः निसा आयत 95) है, जो एक लम्बी आयत का टुकड़ा है, दूसरी तरफ़ पूरी सूरः अन्आम एक ही मर्तबा में नाज़िल हुई है। (इब्ने कसीर 2/122)

सारे क़ुरआने करीम को एक दफ़ा में नाज़िल करने के बजाय थोड़ा-थोड़ा करके क्यों नाज़िल किया गया? यह सवाल खुद अरब के मुश्रिकों ने आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से किया था, बारी तआला ने इस सवाल का जवाब खुद इन अलफ़ाज़ में दिया है:

وَقَالَ الَّذِينَ كَفَرُوا لَوْلَا نُزِّلَ عَلَيْهِ الْقُرْآنُ جُمْلَةً وَاحِدَةً كَذَٰلِكَ لِنُثَبِّتَ بِهِ فُؤَادَكَ وَرَتَّلْنَاهُ تَرْتِيلًا ۝
وَلَا يَأْتُونَكَ بِمَثَلٍ إِلَّا جِئْنَاكَ بِالْحَقِّ وَأَحْسَنَ تَفْسِيرًا ۝ (الفرقان)

"और काफ़िरों ने कहा कि आप पर क़ुरआन एक ही दफ़ा क्यों नाज़िल नहीं किया

गया? इसी तरह (हमने क़ुरआन को थोड़ा-थोड़ा उतारा है) ताकि हम आपके दिल को मुत्मईन कर दें, और हमने इसको रफ़्ता-रफ़्ता पढ़ा है और वह कोई बात आपके पास नहीं लायेंगे मगर हम आपके पास हक़ लायेंगे और (उसकी) उम्दा तफ़सीर पेश करेंगे।"

इमाम राज़ी रहमतुल्लाहि अलैहि ने इस आयत की तफ़सीर में क़ुरआने करीम के थोड़ा-थोड़ा उतरने की जो हिक्मतें बयान फ़रमाई हैं यहाँ उनका ख़ुलासा समझ लेना काफ़ी है, वह फ़रमाते हैं:

1. नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम उम्मी (बिना पढ़े-लिखे) थे, लिखते पढ़ते नहीं थे, इसलिये अगर सारा क़ुरआन एक मर्तबा में नाज़िल हो गया होता तो उसका याद रखना दुश्वार होता, इसके उलट हज़रत मूसा अलैहिस्सलाम लिखना पढ़ना जानते थे, इसलिये उन पर तौरात एक ही मर्तबा में नाज़िल कर दी गई।

2. अगर पूरा क़ुरआन एक दफ़ा में नाज़िल हो जाता तो तमाम अहकाम की पाबन्दी फ़ौरन लाज़िम हो जाती, और यह धीरे-धीरे अहकाम लागू करने की उस हिक्मत के ख़िलाफ़ होता जिसका शरीअते मुहम्मदी में ध्यान रखा गया है।

3. नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को अपनी क़ौम की तरफ़ से हर रोज़ नई तकलीफ़ें बरदाश्त करनी पड़ती थीं, जिब्राईल अलैहिस्सलाम का बार-बार क़ुरआने करीम लेकर आना उन तकलीफ़ों के मुक़ाबले को आसान बना देता था, और आपके दिल की मज़बूती का सबब बनता था।

4. क़ुरआने करीम का एक बड़ा हिस्सा लोगों के सवालात के जवाब और मुख़्तलिफ़ वाक़िआत से मुताल्लिक़ है, इसलिये उन आयतों का नुज़ूल उसी वक़्त मुनासिब था जिस वक़्त वे सवालात किये गये, या वे वाक़िआत पेश आये। इससे मुसलमानों की बसीरत (समझ व अक़्ल) भी बढ़ती थी और क़ुरआने करीम की ग़ैबी ख़बरें बयान करने से उसकी हक़्क़ानियत (हक़ और सच्चा होना) और ज़्यादा ज़ाहिर हो जाता था।

(तफ़सीरे कबीर जिल्द 6 पेज 336)

शान-ए-नुज़ूल

क़ुरआने करीम की आयतें दो क़िस्म की हैं- एक तो वो आयतें हैं जो अल्लाह तआला ने ख़ुद अपनी तरफ़ से नाज़िल फ़रमाईं, कोई ख़ास वाक़िआ या किसी का कोई सवाल वग़ैरह उनके उतरने का सबब नहीं बना। दूसरी आयतें ऐसी हैं कि जिनका नुज़ूल किसी ख़ास वाक़िए की वजह से या किसी सवाल के जवाब में हुआ, जिसे उन आयतों का पसे-मन्ज़र कहना चाहिये, यह पसे-मन्ज़र मुफ़स्सिरीन की इस्तिलाह में "सबब-ए-नुज़ूल" या "शान-ए-नुज़ूल" (यानी उतरने का सबब और मौक़ा) कहलाता है। जैसे सूरः ब-क़रह की आयत नम्बर 221 है:

وَلَا تَنْكِحُوا الْمُشْرِكٰتِ حَتّٰى يُؤْمِنَّ وَلَاَمَةٌ مُّؤْمِنَةٌ خَيْرٌ مِّنْ مُّشْرِكَةٍ وَّلَوْ اَعْجَبَتْكُمْ.....الخ

"और मुश्रिक औरतों से उस वक़्त तक निकाह न करो जब तक कि वे ईमान न ले आयें। यक़ीनन एक मोमिन बाँदी किसी भी मुश्रिक औरत से बेहतर है, चाहे वह मुश्रिक औरत तुम्हें पसन्द हो।"

यह आयत एक ख़ास वाक़िए में नाज़िल हुई थी। ज़माना-ए-जाहिलीयत (इस्लाम से पहले के ज़माने) में हज़रत मुर्सद बिन अबी मुर्सद ग़नवी रज़ियल्लाहु अन्हु के इनाक़ नाम की एक औरत से ताल्लुक़ात थे, इस्लाम लाने के बाद यह मदीना तय्यिबा चले आये और वह औरत मक्का मुकर्रमा में रह गई। एक मर्तबा हज़रत मुर्सद किसी काम से मक्का मुकर्रमा तशरीफ़ ले गये तो इनाक़ ने उन्हें गुनाह की दावत दी, हज़रत मुर्सद रज़ियल्लाहु अन्हु ने साफ़ इनकार करके फ़रमाया कि इस्लाम मेरे और तुम्हारे दरमियान रोक हो चुका है, लेकिन अगर तुम चाहो तो मैं हुज़ूरे पाक सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से इजाज़त के बाद तुमसे निकाह कर सकता हूँ। मदीना तय्यिबा तशरीफ़ लाकर हज़रत मुर्सद रज़ियल्लाहु अन्हु ने आप से निकाह की इजाज़त चाही और अपनी इच्छा का इज़हार किया, इस पर यह आयत नाज़िल हुई और इसने मुश्रिक औरतों से निकाह की मनाही कर दी।

(असबाबुन्नुज़ूल, अल्लामा वाहिदी पेज 38)

यह वाक़िआ ऊपर ज़िक्र हुई आयत का "शाने-नुज़ूल" या "सबबे-नुज़ूल" है। क़ुरआने करीम की तफ़सीर में "शाने-नुज़ूल" बहुत अहमियत का हामिल है, बहुत सी आयतों का मफ़्हूम (मायने और मतलब) उस वक़्त तक सही तौर से समझ में नहीं आ सकता जब तक उनका शाने-नुज़ूल मालूम न हो।

क़ुरआने करीम के सात हुरूफ़ और क़िराअतें

अल्लाह तआला ने क़ुरआने करीम की तिलावत में आसानी पैदा करने के लिये उम्मते मुहम्मदिया को एक आसानी यह अता फ़रमाई है कि इसके अलफ़ाज़ को मुख़्तलिफ़ तरीक़ों से पढ़ने की इजाज़त दी है, क्योंकि कई बार किसी शख़्स से कोई लफ़्ज़ एक तरीक़े से नहीं पढ़ा जाता तो उसे दूसरे तरीक़े से पढ़ सकता है। सही मुस्लिम की एक हदीस में है कि नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम एक मर्तबा बनू ग़िफ़ार के तालाब के पास तशरीफ़ रखते थे कि हज़रत जिब्राईल अलैहिस्सलाम आ गये और उन्होंने फ़रमाया कि अल्लाह तआला ने आपको हुक्म दिया है कि आप अपनी उम्मत को हुक्म दें कि वह क़ुरआन को एक ही हर्फ़ पर पढ़े। आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि मैं अल्लाह से इसकी माफ़ी और मग़फ़िरत तलब करता हूँ मेरी उम्मत में इसकी ताक़त नहीं है। फ़िर जिब्राईल अलैहिस्सलाम दोबारा आपके पास आये और फ़रमाया कि अल्लाह तआला ने

आपको हुक्म दिया है कि आपकी उम्मत क़ुरआने करीम को दो हर्फ़ों पर पढ़े। आपने फ़रमाया कि मैं अल्लाह तआला से माफ़ी और मग़फ़िरत माँगता हूँ कि मेरी उम्मत में इसकी भी ताक़त नहीं है। फिर वह तीसरी बार आये और फ़रमाया कि अल्लाह तआला ने आपको हुक्म दिया है कि आपकी उम्मत क़ुरआने करीम को तीन हर्फ़ों पर पढ़े, आपने फिर फ़रमाया कि मैं अल्लाह तआला से माफ़ी और मग़फ़िरत चाहता हूँ मेरी उम्मत में इसकी भी ताक़त नहीं है, फिर वह चौथी बार आये और फ़रमाया कि अल्लाह तआला ने आपको हुक्म दिया है कि आपकी उम्मत क़ुरआन को सात हर्फ़ों पर पढ़े, पस वे उनमें से जिस हर्फ़ पर पढ़ेंगे उनकी क़िराअत सही होगी। (मनाहिलुल-इरफ़ान जिल्द 1 पेज 133)

सात हुरूफ़ से मुराद सात अन्दाज़ और तरीक़े हैं

चुनाँचे एक और हदीस में हुज़ूरे पाक सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का इरशाद है:

إِنَّ هٰذَا الْقُرْاٰنَ اُنْزِلَ عَلٰى سَبْعَةِ اَحْرُفٍ فَاقْرَءُوْا مَا تَيَسَّرَ مِنْهُ. (صحيح بخارى مع القسطلانى ٧/٤٥٣)

"यह क़ुरआन सात हुरूफ़ पर नाज़िल किया गया है, पस उनमें से जो तुम्हारे लिये आसान हो उस तरीक़े से पढ़ लो।"

नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के इस इरशाद में सात हुरूफ़ से क्या मुराद है? इस बारे में उलेमा के अलग-अलग क़ौल हैं। लेकिन मुहक़्क़िक़ उलेमा के नज़दीक इस में राजेह (वरीयता प्राप्त) मतलब यह है कि क़ुरआने करीम की जो क़िराअतें अल्लाह तआला की तरफ़ से नाज़िल हुई हैं उनमें आपसी फ़र्क़ व इख़्तिलाफ़ कुल सात अन्दाज़ और तरीक़ों पर मुश्तमिल है और वो सात तरीक़े ये हैं:

1. **अस्मा का इख़्तिलाफ़:-** जिसमें इफ़राद, तस्निया, जमा और तज़कीर व तानीस दोनों का इख़्तिलाफ़ दाख़िल है जैसे एक क़िराअत में:

تَمَّتْ كَلِمَتُ رَبِّكَ

है और दूसरी क़िराअत में:

تَمَّتْ كَلِمٰتُ رَبِّكَ

2. **अफ़आल का इख़्तिलाफ़:-** कि किसी क़िराअत में माज़ी का सीग़ा है किसी में मुज़ारेअ और किसी में अमर का। मिसाल के तौर पर एक क़िराअत में:

رَبَّنَا بٰعِدْ بَيْنَ اَسْفَارِنَا

है और दूसरी में:

رَبُّنَا بٰعِدَ بَيْنَ اَسْفَارِنَا.

3. **वुजूहे एराब का इख़्तिलाफ़:-** जिसमें एराब या ज़ेर ज़बर पेश का फ़र्क़ पाया जाता

है। जैसे:

لَا يُضَآرَّ كَاتِبٌ

की जगह:

لَا يُضَآرُّ كَاتِبٌ

और:

ذُوالْعَرْشِ الْمَجِيْدُ

की जगह:

ذُوالْعَرْشِ الْمَجِيْدِ.

4. अलफ़ाज़ की कमी-बेशी का इख़्तिलाफ़:- कि एक क़िराअत में कोई लफ़्ज़ कम और दूसरी में ज़्यादा हो, जैसे एक क़िराअत में:

تَجْرِىْ مِنْ تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ

और दूसरी में:

تَجْرِىْ تَحْتَهَا الْاَنْهٰرُ.

5. आगे-पीछे होने का इख़्तिलाफ़:- कि एक क़िराअत में कोई लफ़्ज़ पहले है और दूसरी में बाद में है। जैसे:

وَجَآءَتْ سَكْرَةُ الْمَوْتِ بِالْحَقِّ

और

وَجَآءَتْ سَكْرَةُ الْحَقِّ بِالْمَوْتِ.

6. बदलीयत का इख़्तिलाफ़:- कि एक क़िराअत में एक लफ़्ज़ है और दूसरी क़िराअत में उसकी जगह कोई दूसरा लफ़्ज़, जैसे:

نُنْشِزُهَا

और

نَنْشُرُهَا

तथा:

فَتَبَيَّنُوْا

और

فَتَثَبَّتُوْا

और

طَلْحٍ

और

طَلْعٍ

7. लहजों का इख़्तिलाफ़:- जिसमें तफ़ख़ीम, तरक़ीक़, इमाला, मद, क़स्र, हमज़, इज़हार और इदग़ाम वग़ैरह के इख़्तिलाफ़ दाख़िल हैं। यानी इसमें लफ़्ज़ तो नहीं बदलता लेकिन उसके पढ़ने का तरीक़ा बदल जाता है। जैसे मूसा को एक क़िराअत में मूसई की तरह पढ़ा जाता है। (1)

बहरहाल क़िराअत के भिन्न होने के इन सात तरीक़ों और अन्दाज़ के तहत बहुत सी क़िराअतें नाज़िल हुई थीं और उनके आपसी फ़र्क़ से मायने में कोई क़ाबिले ज़िक्र फ़र्क़ नहीं होता था, सिर्फ़ तिलावत की आसानी के लिये उनकी इजाज़त दी गई थी।

शुरू में चूँकि लोग क़ुरआने करीम के उस्लूब (अन्दाज़ और ढंग) के पूरी तरह आदी नहीं थे इसलिये इन सात क़िस्मों के दायरे में बहुत सी क़िराअतों की इजाज़त दे दी गई थी, लेकिन नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का मामूल था कि हर साल रमज़ान में जिब्राईल अलैहिस्सलाम के साथ क़ुरआने करीम का दौर किया करते थे, जिस साल आपकी वफ़ात हुई उस साल आपने दो मर्तबा दौर फ़रमाया, उस दौर को "अरज़ा-ए-अख़ीरा" कहते हैं। उस मौक़े पर बहुत सी क़िराअतें मन्सूख़ (निरस्त और ख़त्म) कर दी गईं और सिर्फ़ वे क़िराअतें बाक़ी रखी गईं जो आज तक तवातुर (निरंतर पढ़ने और सुबूत) के साथ महफ़ूज़ चली आती हैं।

हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु ने क़ुरआन तिलावत करने के मामले में ग़लत फ़हमियाँ दूर करने के लिये अपने ज़माना-ए-ख़िलाफ़त में क़ुरआने करीम के सात नुस्ख़े (प्रतियाँ) तैयार कराये और उन सात नुस्ख़ों में तमाम क़िराअतों को इस तरह से जमा फ़रमाया कि क़ुरआने करीम की आयतों पर नुक़्ते और ज़ेर ज़बर पेश नहीं डाले ताकि उन्हीं मज़कूरा क़िराअतों में से जिस क़िराअत के मुताबिक़ चाहें पढ़ सकें। इस तरह अक्सर क़िराअतें उस लिपि में समा गईं और जो क़िराअतें उस लिपि (लिखाई) में न समा सकीं उनको महफ़ूज़ रखने का तरीक़ा आपने यह इख़्तियार फ़रमाया कि एक नुस्ख़ा आपने एक क़िराअत के मुताबिक़ लिखा और दूसरा दूसरी क़िराअत के मुताबिक़। उम्मत ने उन नुस्ख़ों (प्रतियों) में जमा की गयी क़िराअतों को याद रखने का इस क़द्र एहतिमाम किया कि इल्मे क़िराअत

(1) क़िराअतों के इख़्तिलाफ़ में फ़र्क़ के लिये पीछे मज़मून में जो सात तरीक़े और उनके फ़र्क़ को बयान किया गया है, चूँकि यह अहले इल्म के समझने की चीज़ है और अवाम इससे कोई लाभ नहीं उठा सकते, बल्कि बहुत से लोग तो असमंजस और ज़ेहनी परेशानी में पड़ जाते हैं इसलिये इस मज़मून में ज़्यादातर अलफ़ाज़ को ज़ूँ-का-तूँ लिख दिया गया, उनके आसान मायने नहीं लिखे गये। इसलिये इसको हल करने पर ज़्यादा ज़ोर देने के बजाय अगर इस विषय में रुचि है तो किसी आलिम से इसका ख़ुलासा मालूम किया जा सकता है। मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी

एक मुस्तक़िल इल्म बन गया और सैकड़ों उलेमा, क़ारी और हाफ़िज़ हज़रात ने उसकी हिफ़ाज़त में अपनी उम्रें ख़र्च कर दीं।

क़िराअत में क़ुबूलियत का मेयार

दर असल हुआ यह था कि जिस वक़्त हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु ने क़ुरआने करीम के सात नुस्ख़े मुख़्तलिफ़ ख़ित्तों में भेजे तो उनके साथ ऐसे क़ारियों को भी भेजा था जो उनकी तिलावत सिखा सकें, चुनाँचे ये क़ारी हज़रात जब मुख़्तलिफ़ इलाक़ों में पहुँचे तो इन्होंने अपनी-अपनी क़िराअतों के मुताबिक़ लोगों को क़ुरआने करीम की तालीम दी, और ये मुख़्तलिफ़ क़िराअतें लोगों में फैल गईं। उस मौक़े पर कुछ हज़रात ने उन मुख़्तलिफ़ (अलग-अलग और भिन्न) क़िराअतों को याद करने और दूसरों को सिखाने ही के लिये अपनी ज़िन्दगियाँ वक़्फ़ (समर्पित) कर दीं और इस तरह "इल्मे क़िराअत" की बुनियाद पड़ गई और हर ख़ित्ते के लोग इस इल्म में कमाल हासिल करने के लिये क़िराअत के इमामों की तरफ़ रुजू करने लगे। किसी ने सिर्फ़ एक क़िराअत याद की, किसी ने दो, किसी ने तीन, किसी ने सात और किसी ने इससे भी ज़्यादा, इस सिलसिले में एक उसूली ज़ाब्ता पूरी उम्मत में मुसल्लम (माना हुआ) था और हर जगह उसी के मुताबिक़ अमल होता था, वह यह कि सिर्फ़ वह "क़िराअत" क़ुरआन होने की हैसियत से क़ुबूल की जायेगी जिसमें तीन शर्तें पाई जाती हों:

1. हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु के ज़रिये लिखे गये क़ुरआनी नुस्ख़ों की लिपि में उसकी गुन्जाईश हो।

2. अरबी ज़बान के क़वाईद के मुताबिक़ हो।

3. वह नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से सही सनद के साथ साबित हो और क़िराअत के इमामों में मशहूर हो।

जिस क़िराअत में इनमें से कोई एक शर्त भी न पाई जाये उसे क़ुरआन का जुज़ (हिस्सा) नहीं समझा जा सकता। इस तरह मुतवातिर (निरंतर बयान होने वाली) क़िराअतों की एक बड़ी तादाद एक नस्ल के बाद दूसरी नस्ल के ज़रिये नक़ल होती रही और आसानी के लिये ऐसा भी हुआ कि एक इमाम ने एक या चन्द क़िराअतों को इख़्तियार करके उन्हीं की तालीम देनी शुरू कर दी, और वह क़िराअत उस इमाम के नाम से मशहूर हो गई। फिर उलेमा ने उन क़िराअतों को जमा करने के लिये किताबें लिखनी शुरू कीं, चुनाँचे सब से पहले इमाम अबू उबैद क़ासिम बिन सल्लाम रह., इमाम अबू हातिम सजिस्तानी रह., क़ाज़ी इस्माईल रह. और इमाम अबू जाफ़र तबरी रह. ने इस फ़न पर किताबें तैयार कीं जिनमें बीस से ज़्यादा क़िराअतें जमा थीं। फिर अल्लामा अबूबक्र इब्ने मुजाहिद रह. (वफ़ात सन् 324 हिजरी) ने एक किताब लिखी जिसमें सिर्फ़ सात क़ारियों की क़िराअतें जमा की गई

थीं, उनकी यह किताब इस क़द्र मक़बूल हुई कि ये सात क़ारियों की क़िराअतें दूसरे क़ारियों के मुक़ाबले में ज़्यादा मशहूर हो गईं बल्कि कुछ लोग यह समझने लगे कि सही और मुतवातिर क़िराअतें सिर्फ़ यही हैं, हालाँकि हक़ीक़त यह है कि अल्लामा इब्ने मुजाहिद रह. ने महज़ इत्तिफ़ाक़ से उन सात क़िराअतों को जमा कर दिया था, उनका मंशा यह हरगिज़ नहीं था कि उनके अलावा दूसरी क़िराअतें ग़लत या नाक़ाबिले क़ुबूल हैं। अल्लामा इब्ने मुजाहिद रह. के इस अमल से दूसरी ग़लत-फ़हमी यह भी पैदा हुई कि कुछ लोग "सब्अतु अह्रुफ़िन्" का मतलब यह समझने लगे कि इनसे वही सात क़िराअतें मुराद हैं जिन्हें इब्ने मुजाहिद रह. ने जमा किया है, हालाँकि पीछे बताया जा चुका है कि ये सात क़िराअतें सही क़िराअतों का महज़ एक हिस्सा हैं वरना हर क़िराअत जो उपरोक्त शर्तों पर पूरी उतरती हो सही, क़ाबिले क़ुबूल और उन सात हर्फ़ों में दाख़िल है जिनपर क़ुरआने करीम नाज़िल हुआ।

सात क़ारी

बहरहाल! अल्लामा इब्ने मुजाहिद रह. के इस अमल से जो सात क़ारी सबसे ज़्यादा मशहूर हुए वे ये हैं:

1. नाफ़े बिन अब्दुर्रहमान बिन अबी नुऐम रह. (वफ़ात सन् 169 हिजरी) आपने सत्तर ऐसे ताबिईन से इल्मी लाभ उठाया था जो डायरेक्ट हज़रत उबई बिन कअ़ब, हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास और हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अन्हुम के शागिर्द थे। आपकी क़िराअत मदीना तय्यिबा में ज़्यादा मशहूर हुई और आपके रावियों में अबू मूसा क़ालून रह. (वफ़ात सन् 220 हि.) और अबू सईद दरश रह. (वफ़ात सन् 197 हि.) ज़्यादा मशहूर हैं।

2. अब्दुल्लाह बिन कसीर दारी रह. (वफ़ात सन् 120 हिजरी) आपने सहाबा किराम में से हज़रत अनस बिन मालिक, हज़रत अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर और हज़रत अबू अय्यूब अन्सारी रज़ियल्लाहु अन्हुम की ज़ियारत की थी और आपकी क़िराअत मक्का मुकर्रमा में ज़्यादा मशहूर हुई और आपकी क़िराअत के रावियों में बिज़्ज़ी और क़न्बल रह. ज़्यादा मशहूर हैं।

3. अबू अमर ज़ब्बान अला रह. (वफ़ात सन् 154 हिजरी) आपने हज़रत मुजाहिद रह. और सईद बिन जुबैर रहमतुल्लाहि अलैहि के वास्ते से हज़रत इब्ने अब्बास हज़रत और उबई बिन कअ़ब रज़ियल्लाहु अन्हुमा से रिवायत की है और आपकी क़िराअत बसरा में काफ़ी मशहूर हुई, आपकी क़िराअत के रावियों में अबू उमर दौरी रह. (वफ़ात सन् 246 हिजरी) और अबू शुऐब सोसी रह. (वफ़ात सन् 261 हिजरी) ज़्यादा मशहूर हैं।

4. अब्दुल्लाह हिसबी रह. जो इब्ने आमिर के नाम से पहचाने जाते हैं (वफ़ात सन् 188 हिजरी) आपने सहाबा किराम में से हज़रत नौमान बिन बशीर और हज़रत वासिला बिन अस्क़ा रज़ियल्लाहु अन्हुमा की ज़ियारत की थी और क़िराअत का फ़न हज़रत मुग़ीरा बिन

शिहाब मख़ज़ूमी रह. से हासिल किया था जो हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु के शागिर्द थे। आपकी क़िराअत का ज़्यादा रिवाज मुल्क शाम में रहा और आपकी क़िराअत के रावियों में हिशाम और ज़कवान रह. ज़्यादा मशहूर हैं।

5. हमज़ा बिन हबीब ज़य्यात, मौला (आज़ाद किये हुए) इक्रिमा बिन रबीअ़ तैमी रह. (वफ़ात सन् 188 हिजरी) आप सुलैमान आमश रह. के शागिर्द हैं, वह यहया बिन वसाब रह. के वह ज़ुर्र बिन हुबैश रह. के और उन्होंने हज़रत उस्मान, हज़रत अ़ली और अ़ब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ियल्लाहु अ़न्हुम से इल्मी फ़ायदा उठाया था। आपके रावियों में ख़लफ़ बिन हिशाम (वफ़ात सन् 188 हिजरी) और ख़ल्लाद बिन ख़ालिद रह. (वफ़ात सन् 230 हिजरी) ज़्यादा मशहूर हैं।

6. आ़सिम बिन अबू नजूद असदी रह. (वफ़ात सन् 137 हिजरी) आप ज़ुर्र बिन हुबैश रह. के वास्ते से हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ियल्लाहु अ़न्हु और अबू अ़ब्दुर्रहमान बिन सुलमी रह. के वास्ते से हज़रत अ़ली रज़ियल्लाहु अ़न्हु के शागिर्द हैं। आपकी क़िराअत के रावियों में शोबा बिन अ़य्याश रह. (वफ़ात सन् 193 हिजरी) और हफ़्स बिन सुलैमान रह. (वफ़ात सन् 180 हिजरी) ज़्यादा मशहूर हैं। आजकल उमूमन तिलावत इन्हीं हफ़्स बिन सुलैमान रह. की रिवायत के मुताबिक़ होती है।

7. अबुल-हसन अ़ली बिन हमज़ा कसाई नहवी रह. (वफ़ात सन् 189 हिजरी) इनके रावियों में अबू हारिस मरूज़ी रह. (वफ़ात सन् 240 हिजरी) और अबू उमर दौरी रह. (जो अबू अ़मर के रावी भी हैं) ज़्यादा मशहूर हैं। बाद में ज़िक्र हुए तीनों हज़रात की क़िराअतें ज़्यादातर कूफ़ा में राजेह हुईं।

दस और चौदह क़िराअतें

लेकिन जैसा कि पीछे अ़र्ज़ किया जा चुका है इन सात के अ़लावा और भी कई क़िराअतें मुतवातिर और सही हैं। चुनाँचे बाद में जब यह ग़लत-फ़हमी पैदा होने लगी कि सही क़िराअत इन सात ही में मुन्हसिर (सीमित) है तो कई उलेमा (जैसे अ़ल्लामा शज़ाई रह. और अबू बक्र बिन मेहरान रह.) ने सात के बजाय दस क़िराअतें एक किताब में जमा फ़रमाईं, चुनाँचे "क़िराअते अ़शरा" की इस्तिलाह मशहूर हो गई। इन दस क़िराअतों में उपरोक्त सात क़िराअतों के अ़लावा इन तीन हज़रात की क़िराअतें भी शामिल की गईं:

1. अबू जाफ़र यज़ीद बिन क़अ़क़ा रह. (वफ़ात सन् 130 हिजरी) जिनकी क़िराअत मदीना तय्यिबा में ज़्यादा राजेह हुई।

2. याक़ूब बिन इस्हाक़ हज़रमी रह. (वफ़ात सन् 205 हिजरी) आपकी क़िराअत ज़्यादातर बसरा में मशहूर हुई।

3. ख़लफ़ बिन हिशाम रह. (वफ़ात सन् 205 हिजरी) जो इमाम हमज़ा रह. की

क़िराअत के भी रावी हैं, आपकी क़िराअत कूफ़ा में ज़्यादा मशहूर है।

इसके अलावा कुछ हज़रात ने चौदह क़ारियों की क़िराअतें भी जमा की हैं और ऊपर ज़िक्र हुए दस हज़रात पर निम्नलिखित क़ारियों की क़िराअतों का इज़ाफ़ा किया:

1. हसन बसरी रह. (वफ़ात सन् 110 हिजरी) जिनकी क़िराअत का केन्द्र बसरा था।

2. मुहम्मद बिन अब्दुर्रहमान इब्ने मुहीज़ रह. (वफ़ात सन् 123 हिजरी) जिनका मर्कज़ मक्का मुकर्रमा था।

3. यहया बिन मुबारक यज़ीदी रह. (वफ़ात सन् 202 हि.) जो बसरा के रहने वाले थे।

4. अबुल-फ़रज शम्बोज़ी रह. (वफ़ात सन् 388 हिजरी) जो बग़दाद के बाशिन्दे थे।

कुछ हज़रात ने चौदह क़ारियों में से हज़रत शम्बूज़ी रह. के बजाय हज़रत सुलैमान आमश रह. का नाम शुमार किया है। इनमें से पहली दस क़िराअतें सही क़ौल के मुताबिक़ मुतवातिर (निरन्तर बयान होती चली आयी) हैं और उनके अलावा बाक़ी शाज़ हैं (यानी उनके बयान करने वाले बहुत कम हैं)।

(मनाहिलुल-इरफ़ान, मुन्जिदुल-मुक़िरईन लेखक इब्ने जज़री के हवाले से)

क़ुरआन की हिफ़ाज़त का इतिहास

ज़माना-ए-नबवी में क़ुरआन की हिफ़ाज़त

क़ुरआने करीम चूँकि एक ही दफ़ा में पूरा का पूरा नाज़िल नहीं हुआ, बल्कि इसकी मुख़्तलिफ़ आयतें ज़रूरत और हालात की मुनासबत से नाज़िल की जाती रही हैं, इसलिये ज़माना-ए-रिसालत में यह मुम्किन नहीं था कि शुरू ही से इसे किताबी शक्ल में लिखकर महफ़ूज़ कर लिया जाये। चुनाँचे इस्लाम के शुरू ज़माने में क़ुरआने करीम की हिफ़ाज़त के लिये सबसे ज़्यादा ज़ोर हाफ़ज़े (याद करने) पर दिया गया। शुरू-शुरू में जब वही नाज़िल होती तो आप उसके अलफ़ाज़ को उसी वक़्त दोहराने लगते ताकि वो अच्छी तरह याद हो जायें, इस पर सूरः क़ियामत की आयतों में अल्लाह तआला ने आपको हिदायत फ़रमाई कि क़ुरआने करीम को याद रखने के लिये आपको ऐन वही उतरने के वक़्त जल्दी-जल्दी अलफ़ाज़ दोहराने की ज़रूरत नहीं, अल्लाह तआला ख़ुद आप में ऐसा हाफ़ज़ा (याद रखने की क़ुव्वत) पैदा फ़रमा देगा कि एक मर्तबा वही नाज़िल होने के बाद आप उसे भुला नहीं सकेंगे। चुनाँचे यही हुआ कि इधर आप पर क़ुरआनी आयतें नाज़िल होतीं और उधर वो आपको याद आ जातीं, इस तरह सरवरे कायनात सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का सीना-ए-मुबारक क़ुरआने करीम का सबसे ज़्यादा महफ़ूज़ ख़ज़ाना था, जिसमें किसी मामूली सी ग़लती या तरमीम व तग़य्युर (फ़ेर-बदल) की संभावना नहीं थी। फिर आप अतिरिक्त

एहतियात के तौर पर हर साल रमज़ान के महीने में हज़रत जिब्राईल अलैहिस्सलाम को क़ुरआन सुनाया करते थे, और जिस साल आपकी वफ़ात हुई उस साल आपने दो मर्तबा हज़रत जिब्राईल अलैहिस्सलाम के साथ दौर किया। (सही बुख़ारी मय फ़तहुल-बारी जिल्द 9 पेज 36)

फिर आप सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम को क़ुरआने करीम के मायनों की तालीम ही नहीं देते थे बल्कि उन्हें उसके अलफ़ाज़ भी याद कराते थे, और ख़ुद सहाबा किराम को क़ुरआने करीम सीखने और उसे याद रखने का इतना शौक़ था कि हर शख़्स इस मामले में दूसरे से आगे बढ़ने की फ़िक्र में रहता था। कई औरतों ने अपने शौहरों से सिवाय इसके कोई मेहर तलब नहीं किया कि वे उन्हें क़ुरआने करीम की तालीम देंगे। सैंकड़ों सहाबा रज़ियल्लाहु अन्हुम ने अपने आपको बाक़ी के हर ग़म से आज़ाद करके अपनी ज़िन्दगी इसी काम के लिये वक़्फ़ (समर्पित) कर दी थी, वे क़ुरआने करीम को न सिर्फ़ याद करते थे बल्कि रातों को नमाज़ में इसे दोहराते रहते थे। हज़रत उबादा बिन सामित रज़ियल्लाहु अन्हु फ़रमाते हैं कि जब कोई शख़्स हिजरत करके मक्का मुकर्रमा से मदीना तय्यिबा आता तो आप उसे हम अन्सारियों में से किसी के हवाले फ़रमा देते ताकि वह उसे क़ुरआन सिखाये, और मस्जिदे नबवी में क़ुरआन सीखने सिखाने वालों की आवाज़ों का इतना शोर होने लगा कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को यह ताकीद फ़रमानी पड़ी कि अपनी आवाज़ें पस्त करो ताकि कोई मुग़ालता पेश न आये। (मनाहिलुल-इरफ़ान जिल्द 1 पेज 234)

चुनाँचे थोड़ी ही मुद्दत में सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम की एक ऐसी बड़ी जमाअ़त तैयार हो गई जिसे क़ुरआने करीम पूरी तरह ज़बानी याद था, इस जमाअ़त में ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन रज़ियल्लाहु अन्हुम के अलावा हज़रत तल्हा रज़ियल्लाहु अन्हु, हज़रत सअ़द रज़ियल्लाहु अन्हु, हज़रत इब्ने मसऊद रज़ियल्लाहु अन्हु, हज़रत हुज़ैफ़ा बिन यमान रज़ियल्लाहु अन्हु, हज़रत सालिम मौला अबी हुज़ैफ़ा रज़ियल्लाहु अन्हु, हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अन्हु, हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु अन्हु, हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास रज़ियल्लाहु अन्हु, हज़रत अमर बिन आस रज़ियल्लाहु अन्हु, हज़रत अब्दुल्लाह बिन अमर रज़ियल्लाहु अन्हु, हज़रत मुआविया रज़ियल्लाहु अन्हु, हज़रत अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर रज़ियल्लाहु अन्हु, हज़रत अब्दुल्लाह बिन साईब रज़ियल्लाहु अन्हु, हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु अन्हा, हज़रत हफ़्सा रज़ियल्लाहु अन्हा, हज़रत उम्मे सलमा रज़ियल्लाहु अन्हा वग़ैरह ख़ास तौर पर क़ाबिले ज़िक्र हैं।

ग़र्ज़ कि इस्लाम के शुरूआती दौर में ज़्यादा ज़ोर क़ुरआन पाक के याद करने पर दिया गया, और उस वक़्त के हालात में यही तरीक़ा ज़्यादा महफ़ूज़ (सुरक्षित) और क़ाबिले भरोसा था, इसलिये कि उस ज़माने में लिखने-पढ़ने वालों की संख्या बहुत कम थी, किताबों को छापने के लिये प्रेस वग़ैरह के साधन मौजूद न थे, इसलिये अगर सिर्फ़ लिखने पर भरोसा किया जाता तो न क़ुरआने करीम का विस्तृत पैमाने पर फैलाव हो सकता और न

इसकी क़ाबिले भरोसा हिफ़ाज़त, इसके बजाय अल्लाह तआला ने अरब वालों को हाफ़ज़े (याद्दाश्त) की ऐसी क़ुव्वत अता फ़रमा दी थी कि एक-एक शख़्स हज़ारों-अश्आर का हाफ़िज़ होता था और मामूली-मामूली देहातियों को अपने और अपने ख़ानदान ही के नहीं उनके घोड़ों तक के नसब नामे (नस्ल की जानकारी) याद होते थे। इसलिये क़ुरआने करीम की हिफ़ाज़त में इसी क़ुव्वते हाफ़ज़ा से काम लिया गया और इसी के ज़रिये क़ुरआने करीम की आयतें और सूरतें अरब के कोने-कोने में पहुँच गईं।

वही का लेखन

क़ुरआने करीम को हिफ़्ज़ कराने के अलावा नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने क़ुरआने करीम को लिखवाने का भी ख़ास एहतिमाम फ़रमाया। हज़रत ज़ैद बिन साबित रज़ियल्लाहु अन्हु फ़रमाते हैं कि मैं आपके लिये वही की किताबत करता था, जब आप पर वही नाज़िल होती तो आपको सख़्त गर्मी लगती और आपके पाक जिस्म पर पसीने के क़तरे मोतियों की तरह ढलकने लगते थे, फिर जब आप से यह कैफ़ियत ख़त्म हो जाती तो मैं मोंढे की कोई हड्डी या (किसी और चीज़ का) टुकड़ा लेकर ख़िदमत में हाज़िर होता, आप लिखवाते रहते और मैं लिखता जाता, यहाँ तक कि जब मैं लिखकर फ़ारिग़ होता तो क़ुरआन को नक़ल करने के बोझ से मुझे यूँ महसूस होता जैसे मेरी टाँग टूटने वाली है और मैं कभी चल नहीं सकूँगा। बहरहाल! जब मैं फ़ारिग़ होता तो आप फ़रमाते- "पढ़ो" मैं पढ़कर सुनाता, अगर उसमें कोई भूल-चूक होती तो आप उसकी इस्लाह फ़रमा देते और फिर उसे लोगों के सामने ले आते। (मज्मउज़्ज़वाईद जिल्द 1 पेज 156, तबरानी के हवाले से)

हज़रत ज़ैद बिन साबित रज़ियल्लाहु अन्हु के अलावा और भी बहुत से सहाबा किराम वही लिखने के फ़राईज़ (ड्यूटी) अन्जाम देते थे, जिनमें ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन (यानी हज़रत अबू बक्र, हज़रत उमर, हज़रत उस्मान और हज़रत अली) रज़ियल्लाहु अन्हुम, हज़रत उबई बिन कअ़ब, हज़रत ज़ुबैर बिन अव्वाम, हज़रत मुआविया, हज़रत मुग़ीरा बिन शोबा, हज़रत ख़ालिद बिन वलीद, हज़रत साबित बिन क़ैस, हज़रत अबान बिन सईद रज़ियल्लाहु तआला अन्हुम वग़ैरह ख़ास तौर पर क़ाबिले ज़िक्र हैं।

(तफ़सील के लिये देखिये फ़तहुल-बारी जिल्द 9 पेज 18, और ज़ादुल-मआद जिल्द 1 पेज 30)

हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु फ़रमाते हैं कि नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का मामूल यह था कि जब क़ुरआने करीम का कोई हिस्सा नाज़िल होता तो आप वही लिखने वाले को यह हिदायत भी फ़रमा देते थे कि इसे फ़ुलाँ सूरत में फ़ुलाँ-फ़ुलाँ आयत के बाद लिखा जाये। (फ़त्हुल-बारी जिल्द 9 पेज 18) उस ज़माने में चूँकि अरब में काग़ज़ कम मिलता था इसलिये ये क़ुरआनी आयतें ज़्यादातर पत्थर की सिलों, चमड़ों के पारचों, खजूर की शाख़ों, बाँस के टुकड़ों, पेड़ के पत्तों और जानवरों की हड्डियों पर लिखी जाती थीं,

अलबत्ता कभी-कभी काग़ज़ के टुकड़े भी इस्तेमाल किये गये हैं। (फ़त्हुल बारी जिल्द 9 पेज 11)

इस तरह ज़माना-ए-रिसालत में क़ुरआने करीम का एक नुस्ख़ा (प्रति) तो वह था जो आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने अपनी निगरानी में लिखवाया था, अगरचे वह मुरत्तब किताब की शक्ल में नहीं था, बल्कि अलग-अलग पारचों की शक्ल में था, इसके साथ ही कुछ सहाबा किराम भी अपनी याद्दाश्त के लिये क़ुरआनी आयतें अपने पास लिख लेते थे, और यह सिलसिला इस्लाम के शुरू के ज़माने से जारी था। चुनाँचे हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अन्हु के इस्लाम लाने से पहले ही उनकी बहन और बहनोई के सहीफ़े में क़ुरआनी आयतें लिखी हुई थीं। (सीरत इब्ने हिशाम)

हज़रत अबू बक्र रज़ियल्लाहु अन्हु के ज़माने में क़ुरआन का जमा किया जाना

लेकिन नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के ज़माने में क़ुरआने करीम के जितने नुस्ख़े (प्रतियाँ) लिखे गये थे, उनकी कैफ़ियत यह थी कि या तो वे अलग-अलग चीज़ों पर लिखे हुए थे, कोई आयत चमड़े पर, कोई पेड़ के पत्ते पर, कोई हड्डी पर, या वे मुकम्मल नुस्ख़े नहीं थे, किसी सहाबी के पास एक सूरत लिखी हुई थी, किसी के पास दस पाँच सूरतें और किसी के पास सिर्फ़ चन्द आयतें, और कुछ सहाबा के पास आयतों के साथ तफ़सीरी जुमले भी लिखे हुए थे।

इस बिना पर हज़रत अबू बक्र रज़ियल्लाहु अन्हु ने अपने ज़माना-ए-ख़िलाफ़त में यह ज़रूरी समझा कि क़ुरआने करीम के इन मुन्तशिर (बिखरे हुए और अलग-अलग) हिस्सों को एक जगह करके महफ़ूज़ कर दिया जाये। उन्होंने यह कारनामा जिन कारणों के तहत और जिस तरह अन्जाम दिया उसकी तफ़सील हज़रत ज़ैद बिन साबित रज़ियल्लाहु अन्हु ने यह बयान फ़रमाई है कि जंगे यमामा के फ़ौरन बाद हज़रत अबू बक्र रज़ियल्लाहु अन्हु ने एक रोज़ मुझे पैग़ाम भेजकर बुलाया, मैं उनके पास पहुँचा तो वहाँ हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अन्हु भी मौजूद थे। हज़रत अबू बक्र रज़ियल्लाहु अन्हु ने मुझसे फ़रमाया कि "उमर ने अभी आकर मुझसे यह बात कही है कि जंगे यमामा में क़ुरआने करीम के हाफ़िज़ों की एक बड़ी जमाअत शहीद हो गई, और अगर विभिन्न मक़ामात पर क़ुरआने करीम के हाफ़िज़ इसी तरह शहीद होते रहे तो मुझे अन्देशा है कि कहीं क़ुरआने करीम का एक बड़ा हिस्सा नापैद न हो जाये, लिहाज़ा मेरी राय यह है कि आप अपने हुक्म से क़ुरआने करीम को जमा करवाने का काम शुरू कर दें" मैंने उमर से कहा कि जो काम हुज़ूरे पाक सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने नहीं किया वह हम कैसे करें? उमर ने जवाब दिया कि "ख़ुदा की क़सम! यह काम बेहतर ही बेहतर है।" इसके बाद उमर मुझसे बार-बार यही कहते रहे यहाँ तक कि

मुझे भी इस पर इत्मीनान हो गया और अब मेरी राय भी वही है जो उमर की है। उसके बाद हज़रत अबू बक्र रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने मुझसे फ़रमाया कि "तुम नौजवान और समझदार आदमी हो, हमें तुम्हारे बारे में कोई बदगुमानी नहीं है, तुम रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के सामने वही लिखने का काम भी करते रहे हो, लिहाज़ा तुम क़ुरआने करीम की आयतों को तलाश करके उन्हें जमा करो।"

हज़रत ज़ैद बिन साबित रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि "ख़ुदा की क़सम! अगर ये हज़रात मुझे कोई पहाड़ तोड़ने का हुक्म देते तो मुझ पर उसका इतना बोझ न होता जितना क़ुरआने करीम जमा करने के काम का हुआ। मैंने उनसे कहा कि "आप वह काम कैसे कर रहे हैं जो रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने नहीं किया? हज़रत अबू बक्र रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने फ़रमाया- "ख़ुदा की क़सम! यह काम बेहतर ही बेहतर है।" उसके बाद हज़रत अबू बक्र रज़ियल्लाहु अ़न्हु मुझसे बार-बार यही कहते रहे यहाँ तक कि अल्लाह तआ़ला ने मेरा सीना उसी राय के लिये खोल दिया जो हज़रत अबू बक्र व उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हुमा की राय थी, चुनाँचे मैंने क़ुरआनी आयतों को तलाश करना शुरू किया और खजूर की शाख़ों, पत्थर की तख़्तियों और लोगों के सीनों से क़ुरआने करीम को जमा किया।"

(सही बुख़ारी, किताब फ़ज़ाईलुल्-क़ुरआन)

क़ुरआन पाक के इकट्ठा करने के सिलसिले में हज़रत ज़ैद बिन साबित रज़ियल्लाहु अ़न्हु का तरीक़े कार

इस मौक़े पर क़ुरआने करीम जमा करने के सिलसिले में हज़रत ज़ैद बिन साबित रज़ियल्लाहु अ़न्हु के तरीक़े कार (काम करने के तरीक़े) को अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। जैसा कि पीछे ज़िक्र आ चुका है, वह ख़ुद हाफ़िज़े क़ुरआन थे, लिहाज़ा वह अपनी याद्दाश्त से पूरा क़ुरआन लिख सकते थे, उनके अ़लावा भी सैंकड़ों हाफ़िज़ उस वक़्त मौजूद थे, उनकी एक जमाअ़त बनाकर भी क़ुरआने करीम लिखा जा सकता था। तथा क़ुरआने करीम के जो नुस्ख़े (प्रतियाँ) आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के ज़माने में लिखे गये थे, हज़रत ज़ैद रज़ियल्लाहु अ़न्हु उनसे भी क़ुरआने करीम नक़ल फ़रमा सकते थे, उन्होंने एहतियात को मद्दे नज़र रखते हुए सिर्फ़ किसी एक तरीक़े पर बस नहीं किया, बल्कि इन तमाम ज़रियों (माध्यमों) से एक वक़्त में काम लेकर उस वक़्त तक कोई आयत अपने सहीफ़ों में दर्ज नहीं की जब तक उसके निरन्तर होने की तहरीरी और ज़बानी शहादतें नहीं मिल गईं। इसके अ़लावा आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने क़ुरआने करीन की जो आयतें अपनी निगरानी में लिखवाई थीं वे बहुत से सहाबा के पास महफ़ूज़ थीं, हज़रत ज़ैद रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने उन्हें इकट्ठा किया ताकि नया नुस्ख़ा उनसे ही नक़ल किया जाये, चुनाँचे यह उमूमी

ऐलान कर दिया गया कि जिस शख़्स के पास क़ुरआने करीम की जितनी आयतें लिखी हुई मौजूद हों वह हज़रत ज़ैद रज़ियल्लाहु अन्हु के पास ले आये, और जब कोई शख़्स उनके पास क़ुरआने करीम की कोई लिखी हुई आयत लेकर आता तो वह निम्नलिखित चार तरीक़ों से उसकी तस्दीक़ (पुष्टि) करते थे:

1. सबसे पहले अपनी याद्दाश्त से उसकी पुष्टि करते।

2. फिर हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अन्हु भी हाफ़िज़े क़ुरआन थे, और रिवायतों से साबित है कि हज़रत अबू बक्र रज़ियल्लाहु अन्हु ने उनको भी इस काम में हज़रत ज़ैद रज़ियल्लाहु अन्हु के साथ लगा दिया था, और जब कोई शख़्स कोई आयत लेकर आता तो हज़रत ज़ैद रज़ियल्लाहु अन्हु और हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अन्हु दोनों संयुक्त रूप से उसे वसूल करते थे। (फ़तहुल-बारी जिल्द 9 पेज 11, इब्ने अबी दाऊद के हवाले से)

3. कोई लिखी हुई आयत उस वक़्त तक क़ुबूल नहीं की जाती थी जब तक दो क़ाबिले एतिबार गवाहों ने इस बात की गवाही न दी हो कि यह आयत आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के सामने लिखी गई थी। (अल-इतक़ान जिल्द 1 पेज 60)

4. उसके बाद उन लिखी हुई आयतों का उन मजमूओं के साथ मुक़ाबला किया जाता जो मुख़्तलिफ़ सहाबा रज़ियल्लाहु अन्हुम ने तैयार कर रखे थे।

(अल-बुरहान फ़ी उलूमिल-क़ुरआन, अल्लामा ज़रक़शी रह. जिल्द 1 पेज 238)

हज़रत अबू बक्र रज़ियल्लाहु अन्हु के ज़माने में क़ुरआन को जमा करने का यह तरीक़े कार ज़ेहन में रहे तो हज़रत ज़ैद बिन साबित रज़ियल्लाहु अन्हु के इस इरशाद का मतलब अच्छी तरह समझ में आ सकता है कि "सूरः बराअत की आख़िरी आयतें:

لَقَدْ جَآءَكُمْ رَسُوْلٌ مِّنْ اَنْفُسِكُمْ..... الخ

मुझे सिर्फ़ हज़रत अबू ख़ुज़ैमा के पास मिलीं, उनके सिवा किसी और के पास नहीं मिलीं।" इसका मतलब यह हरगिज़ नहीं है कि ये आयतें सिवाय हज़रत अबू ख़ुज़ैमा रज़ियल्लाहु अन्हु के किसी और को याद नहीं थीं, या किसी और के पास लिखी हुई न थीं और उनके सिवा किसी को इनका क़ुरआन का हिस्सा होना मालूम न था, बल्कि मतलब यह है कि जो लोग नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की लिखवाई हुई अलग-अलग आयतें ले-लेकर आ रहे थे उनमें से ये आयतें सिवाय हज़रत अबू ख़ुज़ैमा के किसी के पास नहीं मिलीं, वरना जहाँ तक इन आयतों के क़ुरआनी हिस्सा होने का ताल्लुक़ है, यह बात तवातुर के साथ सब को मालूम थी, क्योंकि सैंकड़ों सहाबा को याद भी थीं और जिन हज़रात के पास क़ुरआनी आयतों के मुकम्मल मजमूए थे उनके पास लिखी हुई भी थीं, लेकिन नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की निगरानी में अलग लिखी हुई सिर्फ़ हज़रत अबू ख़ुज़ैमा रज़ियल्लाहु अन्हु के पास मिलीं किसी और के पास नहीं।

(अल-बुरहान जिल्द 1 पेज 234, 235)

'उम्म' की ख़ुसूसियतें

बहरहाल! हज़रत ज़ैद बिन साबित रज़ियल्लाहु अन्हु ने इस ज़बरदस्त एहतियात के साथ क़ुरआनी आयतों को जमा करके उन्हें काग़ज़ के सहीफ़ों पर मुरत्तब शक्ल में तहरीर फ़रमाया। (इतक़ान जिल्द 1 पेज 60) लेकिन हर सूरत अलग सहीफ़े में लिखी गई इसलिये यह नुस्ख़ा बहुत से सहीफ़ों पर मुश्तमिल था, इस्तिलाह में इस नुस्ख़े को "उम्म' कहा जाता है और इसकी ख़ुसूसियतें (विशेषतायें) ये थीं:

1. इस नुस्ख़े में क़ुरआनी आयत तो नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की बताई हुई तरतीब के मुताबिक़ मुरत्तब थीं लेकिन सूरतें मुरत्तब नहीं थीं, बल्कि हर सूरत अलग अलग लिखी हुई थी। (इतक़ान जिल्द 1 पेज 60)

2. इस नुस्ख़े में क़ुरआन के सातों हुरूफ़ (जिनकी वज़ाहत व तफ़सील पीछे आ चुकी है) जमा थे। (मनाहिलुल-इरफ़ान 1/246, व तारीख़े क़ुरआन अज़ अल्लामा क़ुर्दी पेज 28)

3. इसमें वे तमाम आयतें जमा की गई थीं जिनकी तिलावत मन्सूख़ नहीं हुई थी।

4. इस नुस्ख़े को लिखवाने का मक़सद यह था कि एक मुरत्तब नुस्ख़ा तमाम उम्मत की सामूहिक तस्दीक़ के साथ तैयार हो जाये, ताकि ज़रूरत पड़ने पर उसकी तरफ़ रुजू किया जा सके।

हज़रत अबू बक्र रज़ियल्लाहु अन्हु के लिखवाये हुए ये सहीफ़े आपकी ज़िन्दगी में आपके पास रहे, फिर हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अन्हु के पास रहे, हज़रत उमर की शहादत के बाद इन्हें उम्मुल-मोमिनीन हज़रत हफ़्सा रज़ियल्लाहु अन्हा के पास मुन्तक़िल कर दिया गया, फिर हज़रत हफ़्सा रज़ियल्लाहु अन्हा की वफ़ात के बाद मरवान बिन हकम रह. ने इसे इस ख़्याल से जला दिया कि उस वक़्त हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु के तैयार कराये हुए मसाहिफ़ तैयार हो चुके थे और इस बात पर उम्मत का इजमा (सहमति और एक राय) हो चुका था कि रस्मुल-ख़त (लिपि) और सूरतों की तरतीब के लिहाज़ से इन मसाहिफ़ की पैरवी लाज़िम है। मरवान बिन हकम ने सोचा कि अब कोई नुस्ख़ा बाक़ी न रहना चाहिये जो इस रस्मुल-ख़त (लिपि) और तरतीब के ख़िलाफ़ हो। (फ़त्हुल-बारी जिल्द 9 पेज 16)

हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु के ज़माने में क़ुरआन को जमा किया जाना

जब हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु ख़लीफ़ा बने तो इस्लाम अरब से निकलकर रूम और ईरान के दूर-दराज़ इलाक़ों तक पहुँच चुका था। हर नये इलाक़े के लोग जब मुसलमान होते तो वे उन मुजाहिदीन-ए-इस्लाम या उन व्यापारियों से क़ुरआने करीम सीखते थे जिनकी

बदौलत उन्हें इस्लाम की नेमत हासिल हुई थी, और अनेक सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम ने क़ुरआने करीम आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से विभिन्न क़िराअतों के मुताबिक़ सीखा था, और अल्लाह तआला की तरफ़ से उन सब क़िराअतों के मुताबिक़ उसे पढ़ने की इजाज़त थी, इसलिये हर सहाबी ने अपने शागिर्दों को उसी क़िराअत के मुताबिक़ क़ुरआन पढ़ाया जिसके मुताबिक़ ख़ुद उन्होंने हुज़ूरे पाक से पढ़ा था। इस तरह क़िराअतों का यह इख़्तिलाफ़ (मतभेद और भिन्नता) दूर-दराज़ मुल्कों तक पहुँच गया, जब तक लोग इस हक़ीक़त से वाक़िफ़ थे कि क़ुरआने करीम सात हर्फ़ों पर नाज़िल हुआ है उस वक़्त तक इस इख़्तिलाफ़ (मतभेद) से कोई ख़राबी पैदा नहीं हुई, जब यह इख़्तिलाफ़ दूर-दराज़ मुल्कों में पहुँचा और यह बात उनमें पूरी तरह मशहूर न हो सकी कि क़ुरआने करीम सात हुरूफ़ पर नाज़िल हुआ है तो उस वक़्त लोगों में झगड़े पेश आने लगे, कुछ लोग अपनी क़िराअत को सही और दूसरे की क़िराअत को ग़लत क़रार देने लगे। इन झगड़ों से एक तरफ़ तो यह ख़तरा था कि लोग क़ुरआने करीम की कई क़िराअतों को ग़लत क़रार देने की संगीन ग़लती में मुब्तला होंगे, दूसरे सिवाय हज़रत ज़ैद रज़ियल्लाहु अन्हु के लिखे हुए नुस्ख़े के जो मदीना तय्यिबा में मौजूद था, पूरे आलमे इस्लाम में कोई ऐसा मेयारी नुस्ख़ा (प्रति) मौजूद न था जो पूरी उम्मत के लिये हुज्जत बन सके, क्योंकि दूसरे नुस्ख़े व्यक्तिगत तौर पर लिखे हुए थे, और उनमें तमाम क़िराअतों को जमा करने का कोई एहतिमाम नहीं था, इसलिये इन झगड़ों के तस्फ़िये की भरोसे के क़ाबिल सूरत यही थी कि ऐसे नुस्ख़े पूरी इस्लामी दुनिया में फैला दिये जायें जिनमें तमाम मोतबर क़िराअतें जमा हों और उन्हें देखकर यह फ़ैसला किया जा सके कि कौनसी क़िराअत सही और कौनसी ग़लत है। हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु ने अपने ज़माना-ए-ख़िलाफ़त में यही अज़ीमुश्शान कारनामा अन्जाम दिया।

इस कारनामे की तफ़सील हदीस की रिवायतों से यह मालूम होती है कि हज़रत हुज़ैफ़ा बिन यमान रज़ियल्लाहु अन्हु आरमीनिया और आज़र-बीजान के मोर्चे पर जिहाद में मशग़ूल थे, वहाँ उन्होंने देखा कि लोगों में क़ुरआने करीम की क़िराअतों के बारे में इख़्तिलाफ़ हो रहा है, चुनाँचे मदीना तय्यिबा वापस आते ही वे सीधे हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु के पास पहुँचे और जाकर अर्ज़ किया कि अमीरुल-मोमिनीन! इससे पहले कि यह उम्मत अल्लाह की किताब के बारे में यहूदियों व ईसाईयों की तरह झगड़ों की शिकार हो आप इसका इलाज कीजिये। हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु ने पूछा बात क्या है? हज़रत हुज़ैफ़ा ने जवाब में कहा कि मैं आरमीनिया के मोर्चे पर जिहाद में शामिल था वहाँ मैंने देखा कि शाम के लोग उबई बिन क़अब की क़िराअत पढ़ते हैं जो इराक़ वालों ने नहीं सुनी होती और इराक़ वाले अब्दुल्लाह बिन मसऊद की क़िराअत पढ़ते हैं जो शाम वालों ने नहीं सुनी होती, इसके नतीजे में एक दूसरे को काफ़िर क़रार दे रहे हैं।...

हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु ख़ुद भी इस ख़तरे का एहसास पहले ही कर चुके थे, उन्हें यह इत्तिला मिली थी कि ख़ुद मदीना तय्यिबा में ऐसे वाक़िआत पेश आ रहे हैं कि क़ुरआने करीम के एक मुअल्लिम (शिक्षक) ने अपने शागिर्दों को एक क़िराअत के मुताबिक पढ़ाया और दूसरे मुअल्लिम ने दूसरी क़िराअत के मुताबिक़, इस तरह मुख़्तलिफ़ उस्तादों के शागिर्द जब आपस में मिलते हैं तो उनमें इख़्तिलाफ़ (झगड़ा) होता और और कई बार यह इख़्तिलाफ़ (झगड़ा) उस्तादों तक पहुँच जाता, और वे भी एक दूसरे की क़िराअत को ग़लत क़रार देते। जब हज़रत हुज़ैफ़ा बिन यमान रज़ियल्लाहु अन्हु ने भी इस ख़तरे की तरफ़ तवज्जोह दिलाई तो हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु ने बड़े-बड़े सहाबा को जमा करके उनसे मश्विरा किया और फ़रमाया कि "मुझे यह इत्तिला मिली है कि कुछ लोग एक दूसरे से इस क़िस्म की बातें कहते हैं कि मेरी क़िराअत तुम्हारी क़िराअत से बेहतर है, और यह बात कुफ़्र की हद तक पहुँच सकती है। लिहाज़ा आप लोगों की इस बारे में क्या राय है? सहाबा रज़ियल्लाहु अन्हुम ने ख़ुद हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु से पूछा कि "आपने क्या सोचा है?" हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु ने फ़रमाया "मेरी राय यह है कि हम तमाम लोगों को एक मुस्हफ़ पर जमा कर दें ताकि कोई इख़्तिलाफ़ और फ़र्क़ पेश न आये" सहाबा ने इस राय को पसन्द करके हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु की ताईद फ़रमाई।

चुनाँचे हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु ने लोगों को जमा करके एक ख़ुतबा दिया और उसमें फ़रमाया कि तुम लोग मदीना तय्यिबा में मेरे क़रीब होते हुए क़ुरआने करीम की क़िराअतों के बारे में एक दूसरे को झुठलाते और झगड़ते हो, इससे ज़ाहिर है कि जो लोग मुझसे दूर हैं वे तो और भी ज़्यादा एक दूसरे को झुठलाते और आपस में झगड़ते होंगे, लिहाज़ा तमाम लोग मिलकर क़ुरआने करीम का एक ऐसा नुस्ख़ा (प्रति और कापी) तैयार करें जो सबके लिये लाज़िमी तौर पर माननीय हो।

इस उद्देश्य के लिये हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु ने हज़रत हफ़्सा रज़ियल्लाहु अन्हा के पास पैग़ाम भेजा कि आपके पास (हज़रत अबू बक्र रज़ियल्लाहु अन्हु के तैयार कराये हुए) जो सहीफ़े मौजूद हैं वो हमारे पास भेज दीजिये, हम उनको मसाहिफ़ में नक़ल करके आपको वापस कर देंगे। हज़रत हफ़्सा रज़ियल्लाहु अन्हा ने वो सहीफ़े हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु के पास भेज दिये, हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु ने चार सहाबा की एक जमाअत बनाई जो हज़रत ज़ैद बिन साबित, हज़रत अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर, हज़रत सईद बिन आस और हज़रत अब्दुर्रहमान बिन हारिस बिन हिशाम रज़ियल्लाहु अन्हुम पर मुश्तमिल थी। इस जमाअत को इस काम पर लगाया गया कि वे हज़रत अबू बक्र रज़ियल्लाहु अन्हु के सहीफ़ों से नक़ल करके कई ऐसे मसाहिफ़ तैयार करें जिनमें सूरतें भी मुरत्तब (क्रमवार) हों। इन चार सहाबा रज़ियल्लाहु अन्हुम में से हज़रत ज़ैद रज़ियल्लाहु अन्हु अन्सारी थे और बाक़ी तीनों हज़रात क़ुरैशी, इसलिये हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु ने उनसे फ़रमाया कि

"जब तुम्हारा और ज़ैद का क़ुरआन के किसी हिस्से में इख़्तिलाफ़ (मतभेद) हो (यानी इसमें इख़्तिलाफ़ हो कि कौनसा लफ़्ज़ किस तरह लिखा जाये) तो उसे क़ुरैश की ज़बान (भाषा) के मुताबिक़ लिखना इसलिये कि क़ुरआने करीम उन्हीं की ज़बान में नाज़िल हुआ है।"

बुनियादी तौर पर तो यह काम मज़कूरा चार हज़रात ही के सुपुर्द किया गया था, लेकिन फिर दूसरे सहाबा रज़ियल्लाहु अन्हुम को भी उनकी मदद के लिये साथ लगा दिया गया। इन हज़रात ने क़ुरआन को लिखने के सिलसिले में निम्नलिखित काम अन्जाम दिये:

1. हज़रत अबू बक्र रज़ियल्लाहु अन्हु के ज़माने में जो नुस्ख़ा (प्रति) तैयार हुआ था, उसमें सूरतें मुरत्तब नहीं थीं, बल्कि हर सूरत अलग-अलग लिखी हुई थी, इन हज़रात ने तमाम सूरतों को तरतीब के साथ एक ही मुस्हफ़ में लिखा। (मुस्तद्रक जिल्द 2 पेज 229)

2. क़ुरआने करीम की आयतें इस तरह लिखीं कि उनके रस्मुल-ख़त (लिपि) में तमाम मुतवातिर (निरन्तर चली आ रही) क़िराअतें समा जायें, इसी लिये उन पर न नुक़्ते लगाये गये और न हरकतें (ज़ेर, ज़बर, पेश) ताकि उसे तमाम मुतवातिर क़िराअतों के मुताबिक़ पढ़ा जा सके, जैसे "ننشرها" लिखा ताकि इसे "نَنْشُرُهَا" और "نَنْشِزُهَا" दोनों तरह पढ़ा जा सके, क्योंकि ये दोनों क़िराअतें दुरुस्त हैं। (मनाहिलुल-इरफ़ान जिल्द 1 पेज 253, 254)

3. अब तक क़ुरआने करीम का मुकम्मल मेयारी नुस्ख़ा जो पूरी उम्मत की सामूहिक तस्दीक़ से तैयार किया गया हो, सिर्फ़ एक था, इन हज़रात ने इस नये मुरत्तब मुस्हफ़ की एक से ज़्यादा नक़लें तैयार कीं। आम तौर से मशहूर यह है कि हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु ने पाँच मसाहिफ़ तैयार कराये थे, लेकिन अबू हातिम सजिस्तानी रह. का इरशाद है कि कुल सात नुस्ख़े तैयार किये गये थे जिनमें से एक मक्का मुकर्रमा, एक शाम, एक यमन, एक बहरीन, एक बसरा और एक कूफ़ा भेज दिया गया, और एक मदीना तय्यिबा में महफ़ूज़ रखा गया। (फ़त्हुल-बारी जिल्द 9 पेज 17)

4. उपरोक्त काम करने के लिये उन हज़रात ने बुनियादी तौर पर तो उन्हीं सहीफ़ों को सामने रखा जो हज़रत अबू बक्र रज़ियल्लाहु अन्हु के ज़माने में लिखे गये थे, लेकिन उसके साथ ही अतिरिक्त एहतियात के लिये काम का वही तरीक़ा इख़्तियार किया जो हज़रत अबू बक्र रज़ियल्लाहु अन्हु के ज़माने में इख़्तियार किया गया था, चुनाँचे नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के ज़माने की जो अलग-अलग तहरीरें मुख़्तलिफ़ सहाबा किराम के पास महफ़ूज़ थीं उन्हें दोबारा तलब किया गया और उनके साथ नये सिरे से मुक़ाबला (मिलान) करके ये नुस्ख़े तैयार किये गये। इस मर्तबा सूरः अहज़ाब की एक आयत (यानी 33):

مِنَ الْمُؤْمِنِيْنَ رِجَالٌ صَدَقُوْا مَاعَاهَدُوا اللّٰهَ عَلَيْهِ

अलग लिखी हुई सिर्फ़ हज़रत ख़ुज़ैमा बिन साबित अन्सारी रज़ियल्लाहु अन्हु के पास मिली। पीछे हम लिख चुके हैं कि इसका मतलब यह नहीं कि यह आयत किसी और शख़्स को याद नहीं थी, क्योंकि हज़रत ज़ैद ख़ुद फ़रमाते हैं कि "मुस्हफ़ लिखते वक़्त सूरः

अहज़ाब की वह आयत न मिली जो मैं रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को पढ़ते हुए सुना करता था।" इससे साफ़ वाज़ेह है कि यह आयत हज़रत ज़ैद रज़ियल्लाहु अन्हु और दूसरे सहाबा किराम को अच्छी तरह याद थी, इसी तरह इसका मतलब यह भी नहीं है कि यह आयत कहीं और लिखी हुई न थी, क्योंकि हज़रत अबू बक्र रज़ियल्लाहु अन्हु के ज़माने में जो सहीफ़े लिखे गये ज़ाहिर है कि यह आयत उनमें मौजूद थी, और दूसरे सहाबा किराम के पास क़ुरआने करीम के जो व्यक्तिगत तौर पर लिखे हुए नुस्ख़े (प्रतियाँ) मौजूद थे उनमें यह आयत शामिल थी, लेकिन चूँकि हज़रत अबू बक्र रज़ियल्लाहु अन्हु के ज़माने की तरह इस मर्तबा भी उन तमाम बिखरी हुई और अलग तौर पर मौजूद तहरीरों को जमा किया गया था जो सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम के पास लिखी हुई थीं, इसलिये हज़रत ज़ैद रज़ियल्लाहु अन्हु वग़ैरह ने कोई आयत उन मसाहिफ़ में उस वक़्त तक नहीं लिखी जब तक उन तहरीरों में भी वह न मिल गई, इस तरह दूसरी आयतें तो कई सहाबा किराम के पास अलग लिखी हुई भी मिलीं, लेकिन सूरः अहज़ाब की यह आयत सिवाय हज़रत ख़ुज़ैमा रज़ियल्लाहु अन्हु के किसी और के पास अलग लिखी हुई उपलब्ध नहीं हुई।

5. क़ुरआने करीम के यह कई मेयारी नुस्ख़े तैयार फ़रमाने के बाद हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु ने वे तमाम व्यक्तिगत नुस्ख़े जलवा दिये जो बहुत से सहाबा के पास मौजूद थे ताकि रस्मुल-ख़त (लिपि) मानी हुई क़िराअतों के एकत्र होने और सूरतों की तरतीब के एतिबार से तमाम मसाहिफ़ समान हो जावें और उनमें कोई फ़र्क़ बाक़ी न रहे।

हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु के इस कारनामे को पूरी उम्मत ने प्रशंसा की नज़र से देखा और तमाम सहाबा किराम ने इस काम में उनकी ताइद और हिमायत फ़रमाई, सिर्फ़ हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ियल्लाहु अन्हु को इस मामले में कुछ रंजिश रही जिसकी तफ़सील का यह मौक़ा नहीं।

हज़रत अली रज़ियल्लाहु अन्हु फ़रमाते हैं:

"उस्मान के बारे में कोई बात उनकी भलाई के सिवा न कहो, क्योंकि अल्लाह की क़सम! उन्होंने मसाहिफ़ के मामले में जो काम किया वह हम सब की मौजूदगी में मश्विरे से किया।" (फ़त्हुल-बारी जिल्द 9 पेज 15)

तिलावत में आसानी पैदा करने के इक़्दामात

हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु के उपरोक्त कारनामे के बाद उम्मत का इस पर इजमा (एक मत और इत्तिफ़ाक़) हो गया कि क़ुरआने करीम को उस्मानी लिपि के ख़िलाफ़ किसी और तरीक़े से लिखना जायज़ नहीं। चुनाँचे उसके बाद तमाम मसाहिफ़ इसी तरीक़े के मुताबिक़ लिखे गये और सहाबा किराम व ताबिईन हज़रात ने मसाहिफ़े उस्मानी की नक़्ल तैयार करके क़ुरआने करीम की विस्तृत पैमाने पर इशाअत की (यानी इसको फैलाया)।

लेकिन अभी तक क़ुरआने करीम के नुस्ख़े (प्रतियाँ) चूँकि नुक़्तों (बिन्दियों) और ज़ेर, ज़बर, पेश से ख़ाली थे इसलिये अरब से बाहर के लोगों को उनकी तिलावत (पढ़ने) में दुश्वारी होती थी, चुनाँचे जब इस्लाम अरब से बाहर के मुल्कों में और ज़्यादा फैला तो इस बात की ज़रूरत महसूस हुई कि इसमें नुक़्तों और हरकतों (ज़बर, ज़ेर, पेश, तश्दीद, जज़्म वग़ैरह) का इज़ाफ़ा किया जाये ताकि तमाम लोग आसानी से इसकी तिलावत कर सकें। इस मक़सद के लिये विभिन्न क़दम उठाये गये जिनकी मुख़्तसर तारीख़ इस प्रकार है:

नुक़्ते

अरब वालों में शुरू में हर्फ़ों पर नुक़्ते (बिन्दियाँ) लगाने का रिवाज नहीं था और पढ़ने वाले इस तर्ज़ के इतने आदी थे कि उन्हें बग़ैर नुक़्तों की तहरीर पढ़ने में कोई दुश्वारी नहीं होती थी, और आगे-पीछे के मज़मून की मदद से मिलते-जुलते हुरूफ़ में फ़र्क़ व पहचान करना भी आसानी से हो जाता था, ख़ास तौर से क़ुरआने करीम के मामले में किसी शक व शुब्हे में पड़ने की संभावना इसलिये नहीं थी कि उसकी हिफ़ाज़त का मदार लिखाई पर नहीं बल्कि याद्दाश्तों पर था, और हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु ने जो नुस्ख़े इस्लामी दुनिया के विभिन्न और अनेक हिस्सों में भेजे थे उनके साथ क़ारी भी भेजे गये थे जो उसे पढ़ना सिखा सकें।

इसमें रिवायतें भिन्न और अलग-अलग हैं कि क़ुरआने करीम के नुस्ख़े पर सबसे पहले किसने नुक़्ते डाले? कुछ रिवायतें यह कहती हैं कि यह कारनामा सबसे पहले हज़रत अबू अस्वद दुवली रह. ने अन्जाम दिया। (अल-बुरहान 1/250) कुछ का कहना यह है कि उन्होंने यह काम हज़रत अली रज़ियल्लाहु अन्हु की हिदायत के तहत किया (सुबहुल-अअ़्शी 3/155) और कुछ ने कहा है कि कूफ़ा के गवर्नर ज़ियाद बिन अबी सुफ़ियान ने उनसे यह काम कराया, और एक रिवायत यह भी है कि यह कारनामा हज्जाज बिन यूसुफ़ ने हज़रत हसन बसरी, यहया बिन यामर और नसर बिन आसिम लैसी रह. के ज़रिये अन्जाम दिया।

(तफ़सीरे क़ुर्तुबी 1/63)

हरकतें

लफ़्ज़ों की तरह शुरू में क़ुरआने करीम पर हरकतें (ज़ेर, ज़बर, पेश) भी नहीं थीं, और इसमें भी रिवायतों का बड़ा इख़्तिलाफ़ (मतभेद) है कि सबसे पहले किसने हरकतें लगाईं? कुछ हज़रात का कहना है कि यह काम सबसे पहले अबुल-अस्वद दुवली रह. ने अन्जाम दिया, बाज़ कहते हैं कि यह काम हज्जाज बिन यूसुफ़ ने यहया बिन यामर और नसर बिन आसिम लैसी रह. से कराया। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी 1/63)

इस सिलसिले में तमाम रिवायतों को सामने रखकर ऐसा मालूम होता है कि हरकतें

सबसे पहले अबुल-अस्वद रह. ने मुक़र्रर और तय कीं, लेकिन वो हरकतें इस तरह की नहीं थीं जैसी आजकल प्रचलित हैं, बल्कि ज़बर के लिये हर्फ़ के ऊपर एक नुक़्ता, ज़ेर के लिये हर्फ़ के नीचे एक नुक़्ता और पेश के लिये हर्फ़ के सामने एक नुक़्ता और तनवीन (दो ज़बर, दो ज़ेर, दो पेश) के लिये दो नुक़्ते हर्फ़ के नीचे, ऊपर या सामने मुक़र्रर किये गये। बाद में ख़लील बिन अहमद रह. ने हमज़ा और तश्दीद की अलामतें (निशानी और पहचान) तय कीं। (सुबहुल-अअ़्शी 3/160, 161)

इसके बाद हज्जाज बिन यूसुफ़ ने यहया बिन यामर, नसर बिन आसिम लैसी और हसन बसरी रहमतुल्लाहि अलैहिम से एक साथ क़ुरआने करीम पर हरकतें और नुक़्ते दोनों लगाने की फ़रमाईश की, उस मौक़े पर हरकतों के इज़हार के लिये नुक़्तों के बजाय ज़ेर, ज़बर, पेश की मौजूदा सूरतें मुक़र्रर की गईं, ताकि हुरूफ़ के ज़ाती (अपने असली) नुक़्तों से उनका गड्मड् होना पेश न आये। वल्लाहु सुब्हानहू आलम

अहज़ाब या मन्ज़िलें

सहाबा रज़ियल्लाहु अन्हुम और ताबिईन रहमतुल्लाहि अलैहिम का मामूल था कि वे हर हफ़्ते एक क़ुरआने ख़त्म कर लेते थे, इस मक़सद के लिये उन्होंने रोज़ाना तिलावत की एक मिक़्दार (मात्रा) मुक़र्रर की हुई थी, जिसे "हिज़्ब" या "मन्ज़िल" कहा जाता है। इस तरह पूरे क़ुरआन को कुल सात अहज़ाब पर तक़सीम किया गया था। (अल-बुरहान जिल्द 1 पेज 250)

हिस्से या पारे

आजकल क़ुरआने करीम तीस हिस्सों पर तक़सीम शुदा है जिन्हें तीस पारे कहा जाता है। यह पारों की तक़सीम मायने के एतिबार से नहीं, बल्कि बच्चों को पढ़ाने के लिये आसानी के ख़्याल से क़ुरआने करीम तीस बराबर-बराबर हिस्सों पर बाँट दिया गया है। चुनाँचे कई बार बिल्कुल अधूरी बात पर पारा ख़त्म हो जाता है। यक़ीन के साथ यह कहना मुश्किल है कि यह तीस पारों की तक़सीम किसने की है? कुछ हज़रात का ख़्याल है कि हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु ने मसाहिफ़ नक़ल कराते वक़्त उन्हें तीस अलग-अलग सहीफ़ों में लिखवाया था, लिहाज़ा यह तक़सीम आप ही के ज़माने की है। लेकिन पहले ज़माने के उलेमा की किताबों में इसकी कोई दलील अहक़र को नहीं मिल सकी, अलबत्ता अल्लामा बदरुद्दीन ज़रक़शी रह. ने लिखा है कि क़ुरआन के तीस पारे मशहूर चले आते हैं और मदरसों के क़ुरआनी नुस्ख़ों में इनका रिवाज है।

(अल-बुरहान जिल्द 1 पेज 250, मनाहिलुल-इरफ़ान जिल्द 1 पेज 402)

बज़ाहिर ऐसा मालूम होता है कि यह तक़सीम सहाबा के ज़माने के बाद तालीम की सहूलत के लिये की गई है। वल्लाहु आलम

अख़मास और आशार

शुरू दौर के क़ुरआनी नुस्ख़ों में एक और अ़लामत (पहचान और निशान) का रिवाज था और वह यह कि हर पाँच आयतों के बाद (हाशिये पर) लफ़्ज़ "ख़मूस" या "ख़" और हर दस आयतों के बाद लफ़्ज़ "अ़शर" लिख देते थे। पहली क़िस्म की अ़लामतों को "अख़मास" और दूसरी क़िस्म की अ़लामतों को "आशार" कहा जाता था। (मनाहिलुल-इरफ़ान 1/403) पहले उलेमा में यह इख़्तिलाफ़ (मतभेद) भी रहा है कि कुछ हज़रात इन अ़लामतों (निशानात) को जायज़ और कुछ मक्रूह समझते थे, यक़ीनी तौर से यह कहना भी मुश्किल है कि ये अ़लामतें सबसे पहले किसने लगाईं? एक क़ौल यह है कि इसका मूजिद (शुरूआत करने वाला) हज्जाज बिन यूसुफ़ था और दूसरा क़ौल यह है कि सबसे पहले अ़ब्बासी ख़लीफ़ा मामून ने इसका हुक्म दिया था। (अल-बुरहान 1/251) लेकिन ये दोनों क़ौल इसलिये दुरुस्त मालूम नहीं होते कि खुद सहाबा किराम के ज़माने में "आशार" का तसव्वुर मिलता है, चुनाँचे हज़रत मसरूक़ रह. फ़रमाते हैं कि हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ियल्लाहु अ़न्हु मुस्हफ़ में "आशार" का निशान डालने को मक्रूह समझते थे।

(मुसन्नफ़ इब्ने अबी शैबा 2/497)

रुकूअ़

अख़मास व आशार की पहचान तो बाद में छोड़ दी गयीं लेकिन एक और अ़लामत जो आज तक राईज चली आती है, रुकूअ़ की अ़लामत (निशानी और पहचान) है, और इसका निर्धारण क़ुरआने करीम के मज़ामीन के लिहाज़ से किया गया है, यानी जहाँ कलाम का एक सिलसिला ख़त्म हुआ वहाँ रुकूअ़ की अ़लामत (हाशिये पर हर्फ़ "ع") बना दी गई। अहक़र को तलाश के बावजूद मुस्तनद तौर पर यह मालूम नहीं हो सका कि रुकूअ़ की शुरूआत किसने और किस दौर में की? अलबत्ता यह बात तक़रीबन यक़ीनी है कि इस अ़लामत (पहचान और निशानी) का मक़सद आयतों की ऐसी दरमियानी मिक़्दार को निर्धारित करना है जो एक रक्अ़त में पढ़ी जा सके, और इसको "रुकूअ़" इसी लिये कहते हैं कि नमाज़ में उस जगह पहुँचकर रुकूअ़ किया जाये। पूरे क़ुरआन में 540 रुकूअ़ हैं (1)

(1) फ़तावा आ़लमगीरी में बुख़ारा के मशाईख़ के हवाले से रुकूआ़त की संख्या 540 ही बयान की गयी है। लेकिन जब हमने क़ुरआन करीम के मुरव्वजा नुस्ख़ों में खुद गिनती की तो रुकूआ़त की तायदाद 558 पाई, और कुछ हज़रात ने हमें ख़त में लिखा कि उनकी गिनती के मुताबिक़ रुकूआ़त की कुल संख्या 567 है। हो सकता है कि रुकूअ़ का निशान लगाने में विभिन्न नुस्ख़ों में कुछ भिन्नता रही हो। वल्लाहु आलम उर्दू प्रकाशक।

नाचीज़ हिन्दी अनुवादक ने भी क़ुरआने करीम के रुकूआ़त को गिना तो उनकी तायदाद 558 ही पाई। मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी

इस तरह अगर तरावीह की हर रक्अत में एक रुकूअ पढ़ा जाये तो 27वीं रात में क़ुरआन करीम ख़त्म हो सकता है। (फ़तावा आलमगीरी फ़स्ल अत्तरावीह जिल्द 1 पेज 94) (1)

रुमूज़-ए-औक़ाफ़

(ठहरने और साँस लेने के इशारात)

तिलावत और तजवीद की सहूलत के लिये एक और मुफ़ीद काम यह किया गया कि मुख़्तलिफ़ (बहुत से) क़ुरआनी जुमलों पर ऐसे इशारे लिख दिये गये जिनसे यह मालूम हो सके कि इस जगह वक़्फ़ करना (साँस लेना) कैसा है? इन इशारों को "रुमूज़-ए-औक़ाफ़" कहते हैं और इनका मक़सद यह है कि एक अरबी न जानने वाला इनसान भी जब तिलावत करे तो सही मक़ाम पर वक़्फ़ कर सके, और ग़लत जगह साँस तोड़ने से मायने में कोई तब्दीली पैदा न हो। इनमें से अक्सर रुमूज़ सब से पहले अल्लामा अबू अब्दुल्लाह मुहम्मद बिन तैफ़ूर सजावन्दी रह. ने निर्धारित फ़रमाये। (अन्नश्र फ़िल-क़िराआतिल्-अश्र जिल्द 1 पेज 225) इन रुमूज़ की तफ़सील यह है:

ط यह "वक़्फ़े मुत्लक़" का इशारा है, और इसका मतलब यह है कि यहाँ बात पूरी हो गई है, इसलिये यहाँ वक़्फ़ करना (रुकना और साँस लेना) बेहतर है।

ج यह "वक़्फ़े जायज़" की अलामत है, और इसका मतलब यह है कि यहाँ वक़्फ़ करना जायज़ है।

ز यह "वक़्फ़े मुजव्वज़" का इशारा है, जिसका मतलब यह है कि वक़्फ़ करना दुरुस्त तो है लेकिन बेहतर यह है कि वक़्फ़ न किया जाये।

ص यह "वक़्फ़े मुरख़्ख़स" का निशान है और इसका मतलब यह है कि इस जगह बात तो पूरी नहीं हुई, लेकिन जुमला चूँकि लम्बा हो गया है इसलिये साँस लेने के लिये दूसरे मक़ामात के बजाय यहाँ वक़्फ़ करना चाहिये। (अल्-मिन्हुल-फ़िक्रिया पेज 63)

م यह "वक़्फ़े लाज़िम" का निशान है, इसका मतलब यह है कि अगर यहाँ वक़्फ़ न किया जाये तो आयत के मायने में बड़ी और संगीन ग़लती की संभावना है, लिहाज़ा यहाँ वक़्फ़ करना ज़्यादा बेहतर है। कुछ हज़रात इसे वक़्फ़े वाजिब भी कहते हैं, लेकिन इससे मुराद फ़िक़्ही वाजिब नहीं जिसके छोड़ने से गुनाह हो, बल्कि मक़सद सिर्फ़ यह है कि तमाम औक़ाफ़ (ठहरने की जगहों) में इस जगह वक़्फ़ करना सबसे ज़्यादा बेहतर है।

(अन्नश्र जिल्द 1 पेज 231)

لا यह "ला तक़िफ़" का मुख़फ़्फ़फ़ है, इसका मतलब यह है कि "यहाँ न ठहरो" लेकिन इसका मन्शा यह नहीं है कि यहाँ वक़्फ़ करना नाजायज़ है, बल्कि इसमें बहुत से

मक़ामात ऐसे हैं जहाँ वक़्फ़ करने में कोई हर्ज नहीं, और इसके बाद वाले लफ़्ज़ से शुरूआत करना भी जायज़ है, लिहाज़ा इसका सही मतलब यह है कि अगर यहाँ वक़्फ़ किया जाये तो बेहतर यह है कि इसे दोबारा लौटाकर पढ़ा जाये, अगले लफ़्ज़ से शुरूआत करना सही नहीं। (अन्नश्र जिल्द 1 पेज 233)

इन रुमूज़ के बारे में तो यक़ीनी तौर पर साबित है कि यह अल्लामा सजावन्दी रहमतुल्लाहि अलैहि के तय किये हुए हैं, इनके अलावा भी कुछ रुमूज़ क़ुरआने करीम के नुस्ख़ों में मौजूद हैं, जैसे:

مع यह "मुआनक़ा" का मुख़फ़्फ़फ़ है। यह अलामत उस जगह लिखी जाती है जहाँ एक ही आयत की दो तफ़सीरें मुम्किन हैं, एक तफ़सीर के मुताबिक़ वक़्फ़ एक जगह होगा और दूसरी तफ़सीर के मुताबिक़ दूसरी जगह, लिहाज़ा उनमें से किसी एक जगह वक़्फ़ किया जा सकता है। लेकिन एक जगह वक़्फ़ करने के बाद दूसरी जगह वक़्फ़ करना दुरुस्त नहीं। जैसे:

ذٰلِكَ مَثَلُهُمْ فِى التَّوْرٰةِ. وَمَثَلُهُمْ فِى الْاِنْجِيْلِ. كَزَرْعٍ اَخْرَجَ شَطْئَهٗ..... الخ

इसमें अगर "तौराति" पर वक़्फ़ कर लिया तो "इन्जीलि" पर वक़्फ़ दुरुस्त नहीं, और अगर "इन्जीलि" पर वक़्फ़ करना है तो "तौराति" पर वक़्फ़ दुरुस्त नहीं। हाँ दोनों जगह वक़्फ़ न करें तो दुरुस्त है। इसका एक नाम "मुक़ाबला" भी है और इसकी सबसे पहले निशानदेही इमाम अबुल-फ़ज़्ल राज़ी रह. ने फ़रमाई है।

(अन्नश्र जिल्द 1 पेज 237, बलू-इतक़ान जिल्द 1 पेज 88)

سكتة यह "सक्ता" की निशानी है और इसका मक़सद यह है कि इस जगह रुकना चाहिये लेकिन साँस न टूटने पाये। यह उमूमन उस जगह लाया जाता है जहाँ मिलाकर पढ़ने से मायने में ग़लत-फ़हमी का अन्देशा हो।

وقفة इस जगह "सक्ता" से थोड़ी ज़्यादा देर तक रुकना चाहिये, लेकिन साँस यहाँ भी न टूटे।

ق यह "क़ी-ल अलैहिल्-वक़्फ़" का मुख़फ़्फ़फ़ है, मतलब यह है कि कुछ हज़रात के नज़दीक यहाँ वक़्फ़ है और कुछ के नज़दीक नहीं है।

قف यह लफ़्ज़ "क़िफ़" है, जिसके मायने हैं "ठहर जाओ" और यह उस जगह लाया जाता है जहाँ पढ़ने वाले को यह ख़्याल हो सकता हो कि यहाँ वक़्फ़ दुरुस्त नहीं।

صلے यह "अल्-वस्ल औला" का मुख़फ़्फ़फ़ है जिसके मायने हैं कि "मिलाकर पढ़ना बेहतर है"।

صل यह "क़द् यूसलु" का मुख़फ़्फ़फ़ है, यानी यहाँ कुछ लोग ठहरते हैं और कुछ मिलाकर पढ़ने को पसन्द करते हैं।

وقف النبی صلی اللہ علیہ وسلم यह उन मक़ामात पर लिखा जाता है जहाँ किसी रिवायत की रू से यह साबित है कि आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने तिलावत करते हुए इस जगह वक़्फ़ फ़रमाया था।

नोटः- गोल दायरा (O) आयत का निशान है।

क़ुरआने करीम की छपाई

जब तक प्रेस ईजाद नहीं हुआ था क़ुरआने करीम के तमाम नुस्ख़े क़लम से लिखे जाते थे और हर दौर में ऐसे कातिबों की एक बड़ी जमाअ़त मौजूद रही है जिसका किताबते क़ुरआन (क़ुरआन लिखने) के सिवा कोई मश्ग़ला नहीं था। क़ुरआने करीम के हुरूफ़ को बेहतर से बेहतर अन्दाज़ में लिखने के लिये मुसलमानों ने जो मेहनतें कीं और जिस तरह इस अज़ीमुश्शान किताब के साथ अपने आशिक़ाना ताल्लुक़ और लगाव का इज़हार किया उसकी एक बड़ी मुफ़स्सल और दिलचस्प तारीख़ है जिसके लिये मुस्तक़िल एक किताब चाहिये, यहाँ उसकी तफ़सील का मौक़ा नहीं।

फिर जब प्रेस ईजाद हुआ तो सबसे पहले हेमबर्ग के मक़ाम पर सन् 1113 हिजरी में क़ुरआने करीम छपा जिसका एक नुस्ख़ा अब तक दारुल-कुतुब मिस्रिया में मौजूद है। उसके बाद कई ग़ैर-मुस्लिम इस्लामिक विद्वानों ने क़ुरआने करीम के नुस्ख़े छपवाये, लेकिन इस्लामी दुनिया में उनको क़ुबूलियत हासिल न हो सकी। उसके बाद मुसलमानों में सबसे पहले मौला-ए-उस्मान ने रूस के शहर सेनिट पीटर्सबर्ग में सन् 1787 ईसवी में क़ुरआने करीम का एक नुस्ख़ा प्रकाशित कराया, इसी तरह क़ाज़ान में भी एक नुस्ख़ा छापा गया। सन् 1828 ईसवी में ईरान के शहर तहरान में क़ुरआने करीम को पत्थर पर छापा गया, फिर इसके छपे हुए नुस्ख़े (प्रतियाँ) दुनिया भर में आम हो गये।

(तफ़सील के लिये देखिये 'तारीख़ुल-क़ुरआन' लिल्क़ुर्दी रह. पेज 186, और 'उलूमुल-क़ुरआन' डॉक्टर सुबही सालेह, उर्दू तर्जुमा अज़ ग़ुलाम अहमद हरीरी पेज 142)

इल्मे तफ़सीर

अब कुछ ज़रूरी मालूमात इल्मे तफ़सीर (क़ुरआन पाक की व्याख्या) के सिलसिले में पेशे ख़िदमत हैं। अरबी ज़बान में "तफ़सीर" के लफ़्ज़ी मायने हैं "खोलना" और इस्तिलाह में इल्मे तफ़सीर उस इल्म को कहते हैं जिसमें क़ुरआने करीम के मायने बयान किये जायें, और उसके अहकाम और हिक्मतों को खोलकर वाज़ेह (स्पष्ट) किया जाये। (अल-बुरहान) क़ुरआने क़रीम में नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से ख़िताब करते हुए इरशाद हैः

وَاَنْزَلْنَآ اِلَيْكَ الذِّكْرَ لِتُبَيِّنَ لِلنَّاسِ مَا نُزِّلَ اِلَيْهِمْ. (١٦ : ٤٤)

नाक़ाबिले एतिबार हर तरह की रिवायतें मौजूद हैं, इसलिये मुहक़्क़िक़ मुफ़स्सिरीन उस वक़्त तक किसी रिवायत को क़ाबिले भरोसा नहीं समझते जब तक वह रिवायतों की छान-पिछोड़ के उसूलों पर पूरी न उतरती हो। लिहाज़ा जो रिवायत जहाँ नज़र आ जाये उसे देखकर क़ुरआने करीम की कोई तफ़सीर मुतैयन कर लेना दुरुस्त नहीं, क्योंकि वह रिवायत ज़ईफ़ (कमज़ोर) और दूसरी मज़बूत रिवायतों के ख़िलाफ़ भी हो सकती है। दर हक़ीक़त यह मामला बड़ा नाज़ुक है और इसमें क़दम रखना उन्हीं लोगों का काम है जिन्होंने अपनी उम्रें इन उलूम को हासिल करने में ख़र्च की हैं।

3. सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के अक़वाल

सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम ने क़ुरआने करीम की तालीम डायरेक्ट नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से हासिल की थी, इसके अ़लावा वही नाज़िल होने के वक़्त वे ख़ुद मौजूद थे, और उन्होंने क़ुरआन नाज़िल होने के पूरे माहौल और पसे-मन्ज़र को बज़ाते ख़ुद देखा था इसलिये फ़ितरी तौर पर क़ुरआने करीम की तफ़सीर में उन हज़रात के अक़वाल (बातें और रायें) जितने मुस्तनद और क़ाबिले भरोसा हो सकते हैं बाद के लोगों को वह मक़ाम हासिल नहीं हो सकता, लिहाज़ा जिन आयतों की तफ़सीर क़ुरआने करीम या हदीस से मालूम नहीं होती उनमें सबसे ज़्यादा अहमियत सहाबा किराम के अक़वाल को हासिल है। चुनाँचे अगर किसी आयत की तफ़सीर पर सहाबा किराम का इत्तिफ़ाक़ (सहमति) हो तो मुफ़स्सिरीन हज़रात उसी को इख़्तियार करते हैं और उसके ख़िलाफ़ कोई और तफ़सीर बयान करना जायज़ नहीं। हाँ! अगर किसी आयत की तफ़सीर में सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के अक़वाल मुख़्तलिफ़ (भिन्न) हों तो बाद के मुफ़स्सिरीन दूसरी दलीलों की रोशनी में यह देखते हैं कि कौनसी तफ़सीर को तरजीह (वरीयता) दी जाये? इस मामले में अहम उसूल और ज़ाब्ते 'उसूले फ़िक़्ह' 'उसूले हदीस' और 'उसूले तफ़सीर' में तयशुदा हैं उनकी तफ़सील का यहाँ मौक़ा नहीं।

4. ताबिईन हज़रात के अक़वाल

सहाबा किराम के बाद 'ताबिईन' हज़रात का नम्बर आता है। ये वे हज़रात हैं जिन्होंने क़ुरआने करीम की तफ़सीर सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम से सीखी है, इसलिये इनके अक़वाल (बातें और रायें) भी इल्मे तफ़सीर में बड़ी अहमियत के हामिल हैं, अगरचे इस मामले में उलेमा का इख़्तिलाफ़ (मतभेद) है कि ताबिईन के अक़वाल तफ़सीर में हुज्जत हैं या नहीं? (अल-इतक़ान ,2/179) लेकिन उनकी अहमियत से इनकार नहीं किया जा सकता।

5. लुग़ते अ़रब

क़ुरआने करीम चूँकि अ़रबी भाषा में नाज़िल हुआ है इसलिये तफ़सीरे क़ुरआन के लिये इस ज़बान (भाषा) पर मुकम्मल उबूर (महारत) हासिल करना ज़रूरी है। क़ुरआने करीम की बहुत सी आयतें ऐसी हैं कि उनके पसे-मन्ज़र में चूँकि कोई शाने नुज़ूल या कोई और फ़िक़्ही या कलामी मसला नहीं होता, इसलिये उनकी तफ़सीर में नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम या सहाबा किराम व ताबिईन हज़रात के अक़वाल मन्क़ूल नहीं होते। चुनाँचे उनकी तफ़सीर का ज़रिया सिर्फ़ लुग़ते अ़रब (अ़रब की भाषा) होती है और लुग़त ही की बुनियाद पर उसकी वज़ाहत व बयान किया जाता है। इसके अ़लावा अगर किसी आयत की तफ़सीर में कोई इख़्तिलाफ़ (मतभेद) हो तो विभिन्न और अनेक रायों में फ़ैसला करने के लिये भी इल्मे लुग़त से काम लिया जाता है।

6. ग़ौर व फ़िक्र और इस्तिंबात

तफ़सीर का आख़िरी माख़ज़ (स्रोत) "ग़ौर व फ़िक्र और इस्तिंबात" है। क़ुरआने करीम के नुक्ते और भेद की बातें एक ऐसा अथाह समन्दर है जिसकी कोई हद व सीमा नहीं। चुनाँचे जिस शख़्स को अल्लाह तआ़ला ने इस्लामी उलूम में बसीरत (समझ और गहराई) अ़ता फ़रमाई हो वह जितना-जितना इसमें ग़ौर व फ़िक्र करता है उतने ही नये-नये राज़ और नुक्ते सामने आते हैं। चुनाँचे मुफ़स्सिरीन हज़रात अपने-अपने सोच विचार के नतीजे भी अपनी तफ़सीरों में बयान फ़रमाते हैं लेकिन ये भेद व नुक्ते (गहरी और अनोखी बातें) उसी वक़्त क़ाबिले क़ुबूल होते हैं जबकि वह उपरोक्त पाँच माख़ज़ों (स्रोतों) से न टकरायें, लिहाज़ा अगर कोई शख़्स क़ुरआने करीम की तफ़सीर में कोई ऐसा नुक्ता या खोजी हुई बात बयान करे जो क़ुरआन व सुन्नत, इजमा, लुग़त या सहाबा किराम व ताबिईन हज़रात के अक़वाल के ख़िलाफ़ हो या किसी दूसरे शरई उसूल से टकराता हो तो उसका कोई एतिबार नहीं। कुछ सूफ़िया हज़रात (बुज़ुर्गों) ने तफ़सीर में इस क़िस्म के भेद और नुक्ते बयान करने शुरू किये थे लेकिन उम्मत के मुहक़्क़िक़ उलेमा ने उन्हें क़ाबिले एतिबार नहीं समझा, क्योंकि क़ुरआन व सुन्नत और शरीअ़त के बुनियादी उसूलों के ख़िलाफ़ किसी की निजी राय ज़ाहिर है कि कोई हैसियत ही नहीं रखती। (अल-इतक़ान जिल्द 2 पेज 184)

इस्राईली रिवायतों का हुक्म

"इस्राईलियात" उन रिवायतों को कहते हैं जो अहले किताब यानी यहूदियों और ईसाईयों से हम तक पहुँची हैं। पहले ज़माने के मुफ़स्सिरीन हज़रात की आदत थी कि वे किसी आयत के बारे में हर क़िस्म की वे रिवायतें लिख देते थे जो उन्हें सनद के साथ

पहुँचती थीं। उनमें बहुत सी रिवायतें इस्राईलियत भी होती थीं। इसलिये उनकी हक़ीक़त से वाक़िफ़ होना भी ज़रूरी है। उनकी हक़ीक़त यह है कि कुछ सहाबा किराम और ताबिईन हज़रात पहले अहले-किताब (यहूदियों व ईसाईयों) के मज़हब से ताल्लुक़ रखते थे, बाद में जब वे इस्लाम से मुशर्रफ़ (सम्मानित) हुए और क़ुरआने करीम की तालीम हासिल की तो उन्हें क़ुरआने करीम में पिछली उम्मतों के बहुत से वाक़िआत नज़र आये जो उन्होंने अपने पहले मज़हब की किताबों में भी पढ़े थे। चुनाँचे वे क़ुरआनी वाक़िआत के सिलसिले में वो तफ़सीलात मुसलमानों के सामने बयान करते थे जो उन्होंने अपने पुराने मज़हब की किताबों में देखी थीं, यही तफ़सीलात 'इस्राईलियात' (इस्राईली रिवायतों) के नाम से तफ़सीर की किताबों में दाख़िल हो गई हैं। हाफ़िज़ इब्ने कसीर रह. ने जो बड़े मुहक़्क़िक़ मुफ़स्सिरीन में से हैं उन्होंने लिखा है कि इस्राईलियात की तीन क़िस्में हैं:

1. वे रिवायतें जिनकी सच्चाई क़ुरआन व सुन्नत की दूसरी दलीलों से साबित है, जैसे फ़िरऔन का डूबना और हज़रत मूसा अलैहिस्सलाम का तूर पहाड़ पर तशरीफ़ ले जाना वग़ैरह।

2. वे रिवायतें जिनका झूठ होना क़ुरआन व सुन्नत की दूसरी दलीलों से साबित है, जैसे इस्राईली रिवायतों में यह ज़िक्र है कि हज़रत सुलैमान अलैहिस्सलाम अपनी आख़िरी उम्र में (अल्लाह की पनाह) मुर्तद (बेदीन) हो गये थे। इसकी तरदीद (खण्डन) क़ुरआने करीम से साबित है। इरशाद है कि:

وَمَا كَفَرَ سُلَيْمٰنُ وَلٰكِنَّ الشَّيٰطِيْنَ كَفَرُوْا. (۲:۱۰۲)

(और सुलैमान अलैहिस्सलाम काफ़िर नहीं हुए बल्कि शैतानों ने कुफ़्र किया) इसी तरह जैसे इस्राईली रिवायतों में बयान किया गया है कि (अल्लाह की पनाह) हज़रत दाऊद अलैहिस्सलाम ने अपने फ़ौजी अफ़सर ओरय्या की बीवी से ज़िना किया, या उसे मुख़्तलिफ़ तदबीरों से मरवाकर उसकी बीवी से निकाह कर लिया। यह भी खुला झूठ है और इस क़िस्म की रिवायतों को ग़लत समझना लाज़िम है।

3. वे रिवायतें जिनके बारे में क़ुरआन व सुन्नत और दूसरी शरई दलीलें ख़ामोश हैं, जैसे कि तौरात के अहकाम वग़ैरह, ऐसी रिवायतों के बारे में नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की तालीम यह है कि उनके बारे में ख़ामोशी इख़्तियार की जाये, न उनकी तस्दीक़ की जाये और न तक्ज़ीब (यानी न उनको सही कहें और न ग़लत)। अलबत्ता इस मसले में उलेमा का इख़्तिलाफ़ है कि आया ऐसी रिवायतों को नक़ल करना जायज़ भी है या नहीं? हाफ़िज़ इब्ने कसीर रह. ने निर्णायक क़ौल यह बयान किया है कि उन्हें नक़ल करना जायज़ तो है, लेकिन इससे कोई फ़ायदा नहीं, क्योंकि शरई एतिबार से वह हुज्जत नहीं है। (मुक़द्दिमा तफ़सीर इब्ने कसीर)

क़ुरआनी तफ़सीर के बारे में एक बहुत बड़ी ग़लत-फ़हमी

ऊपर बयान हुई तफ़सील से यह बात वाज़ेह हो गई होगी कि क़ुरआने करीम की तफ़सीर एक बहुत ही नाज़ुक और मुश्किल काम है, जिसके लिये सिर्फ़ अ़रबी ज़बान (भाषा) जान लेना काफ़ी नहीं, बल्कि तमाम सम्बन्धित उलूम में महारत ज़रूरी है। चुनाँचे उलेमा ने लिखा है कि क़ुरआन के मुफ़स्सिर (व्याख्यापक) के लिये ज़रूरी है कि वह अ़रबी के नह्व व सर्फ़ (ग्रामर का ज्ञान) और बलाग़त व अदब (साहित्य और भाषाई अन्दाज़े बयान व कलाम) के अ़लावा इल्मे हदीस, उसूले फ़िक़ा व तफ़सीर और अ़क़ीदों व कलाम का विस्तृत और गहरा इल्म रखता हो, क्योंकि जब तक इन उलूम से मुनासबत न हो इनसान क़ुरआने करीम की तफ़सीर में किसी सही नतीजे तक नहीं पहुँच सकता।

अफ़सोस है कि कुछ अ़रसे से मुसलमानों में यह ख़तरनाक वबा चल पड़ी है कि बहुत से लोगों ने सिर्फ़ अ़रबी पढ़ लेने को तफ़सीरे क़ुरआन के लिये काफ़ी समझ रखा है, चुनाँचे जो शख़्स भी मामूली अ़रबी ज़बान पढ़ लेता है वह क़ुरआने करीम की तफ़सीर में अपनी राय चलाना शुरू कर देता है, बल्कि कई बार ऐसा भी देखा गया है कि अ़रबी ज़बान की बहुत मामूली सी जानकारी रखने वाले लोग, जिन्हें अ़रबी पर भी मुकम्मल महारत नहीं होती, न सिर्फ़ मन-माने तरीक़े पर क़ुरआन की तफ़सीर शुरू कर देते हैं बल्कि पुराने मुफ़स्सिरीन की ग़लतियाँ निकालने के पीछे लग जाते हैं, यहाँ तक कि कुछ लोग तो यह सितम ढहाते हैं कि सिर्फ़ तर्जुमे का मुताला करके अपने आपको क़ुरआन का आ़लिम समझने लगते हैं और बड़े-बड़े मुफ़स्सिरीन पर तन्क़ीद (आलोचनात्मक टिप्पणियाँ) करने से नहीं चूकते।

ख़ूब अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि यह बहुत ही ख़तरनाक तरीक़ा है, जो दीन के मामले में निहायत घातक गुमराही की तरफ़ ले जाता है। दुनियावी उलूम व फ़ुनून के बारे में हर शख़्स इस बात को समझ सकता है कि अगर कोई शख़्स केवल अंग्रेज़ी ज़बान सीखकर मैडिकल साईंस की किताबों का मुताला कर ले तो दुनिया का कोई अ़क़्ल रखने वाला उसे डॉक्टर तस्लीम नहीं कर सकता, और न अपनी जान उसके हवाले कर सकता है जब तक कि उसने किसी मैडिकल कॉलेज में जाकर बाक़ायदा तालीम व ट्रेनिंग हासिल न की हो, इसलिये कि डॉक्टर बनने के लिये सिर्फ़ अंग्रेज़ी सीख लेना काफ़ी नहीं, बल्कि बाक़ायदा डॉक्टरी की तालीम व तरबियत हासिल करना ज़रूरी है। इसी तरह कोई अंग्रेज़ी जानने वाला इन्जीनियरिंग की किताबों का मुताला (अध्ययन) करके इन्जीनियर बनना चाहे तो दुनिया का कोई भी बाख़बर इनसान उसे इन्जीनियर तस्लीम नहीं कर सकता, इसलिये

कि यह काम सिर्फ़ अंग्रेज़ी ज़बान सीखने से नहीं आ सकता, बल्कि इसके लिये माहिर उस्तादों की निगरानी में रहकर बाक़ायदा इस फ़न को उनसे सीखना ज़रूरी है।

जब डॉक्टर और इन्जीनियर बनने के लिये यह कड़ी शर्तें ज़रूरी हैं तो आख़िर क़ुरआन व हदीस के मामले में सिर्फ़ अरबी ज़बान सीख लेना काफ़ी कैसे हो सकता है? ज़िन्दगी के हर शोबे में हर शख़्स इस उसूल को जानता और इस पर अमल करता है कि हर इल्म व फ़न के सीखने का एक ख़ास तरीक़ा और उसकी मख़्सूस शर्तें होती हैं, जिन्हें पूरा किये बग़ैर उस इल्म व फ़न में उसकी राय मोतबर नहीं समझी जाती, तो आख़िर क़ुरआन व सुन्नत इतने लावारिस कैसे हो सकते हैं कि इनकी तशरीह व तफ़सीर (व्याख्या व मतलब बयान करने) के लिये किसी इल्म व फ़न के हासिल करने की ज़रूरत न हो? और इसके मामले में जो शख़्स चाहे राय देनी शुरू कर दे?

कुछ लोग कहते हैं कि क़ुरआने करीम ने ख़ुद इरशाद फ़रमाया है:

وَلَقَدْ يَسَّرْنَا الْقُرْآنَ لِلذِّكْرِ. (١٧:٥٤)

"और बिला-शुब्हा हमने क़ुरआने करीम को नसीहत हासिल करने के लिये आसान कर दिया है।"

और जब क़ुरआने करीम एक आसान किताब है तो इसकी तशरीह (मतलब और व्याख्या) के लिये किसी लम्बे-चौड़े इल्म व फ़न की ज़रूरत नहीं। लेकिन यह इस्तिदलाल (तर्क देना) एक सख़्त मुग़ालता (धोखे में डालना) है, जो ख़ुद कम-समझी और कम-इल्मी पर आधारित है। हक़ीक़त यह है कि क़ुरआने करीम की आयतें दो क़िस्म की हैं- एक तो वो आयतें हैं जिनमें आम नसीहत की बातें, सबक़ लेने वाले वाक़िआत और इबरत व सीख के मज़ामीन बयान किये गये हैं, जैसे दुनिया की नापायदारी (यानी बाक़ी न रहना), जन्नत व दोज़ख़ के हालात, ख़ौफ़े ख़ुदा और फ़िक्रे आख़िरत पैदा करने वाली बातें, और ज़िन्दगी की दूसरी सीधी-सादी हक़ीक़तें, इस क़िस्म की आयतें बिला-शुब्हा आसान हैं, और जो शख़्स अरबी ज़बान से वाक़िफ़ हो वह उन्हें समझकर नसीहत हासिल कर सकता है। ऊपर बयान हुई आयत में इसी क़िस्म की तालीमात के बारे में यह कहा गया है कि इनको हमने आसान कर दिया है। चुनाँचे ख़ुद इस आयत में लफ़्ज़ "लिज़्ज़िक्रि" (नसीहत के वास्ते) इस पर इशारा कर रहा है।

इसके उलट दूसरी क़िस्म की आयतें वो हैं जो अहकाम व क़वानीन, अक़ीदों और इल्मी मज़ामीन पर मुश्तमिल हैं। इस क़िस्म की आयतों का सही और पूरी तरह समझना और उनसे अहकाम व मसाईल निकालना हर शख़्स का काम नहीं, जब तक इस्लामी उलूम में बसीरत और पुख़्तगी (महारत और परिपक्वता) हासिल न हो, यही वजह है कि सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम की मातृभाषा अग़रचे अरबी थी और अरबी समझने के लिये उन्हें कहीं तालीम हासिल करने की ज़रूरत नहीं थी, लेकिन वे आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम

से क़ुरआने करीम की तालीम हासिल करने में लम्बी मुद्दतें ख़र्च करते थे। अल्लामा सुयूती रहमतुल्लाहि अलैहि ने इमाम अबू अब्दुर्रहमान सुलमी रह. से नक़ल किया है कि जिन हज़राते सहाबा रज़ियल्लाहु अन्हुम ने सरवरे दो आलम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से क़ुरआने करीम की बाक़ायदा तालीम हासिल की है, जैसे हज़रत उस्मान बिन अफ़्फ़ान और हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ियल्लाहु अन्हुमा वग़ैरह, उन्होंने हमें बताया कि जब वे आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से क़ुरआने करीम की दस आयतें सीखते तो उस वक़्त तक आगे नहीं बढ़ते थे जब तक उन आयतों के मुताल्लिक़ (सम्बन्धित) तमाम इल्मी और अमली बातों को न जान लें। वे फ़रमाते थे कि:

فتعلّمنا القرآن والعلم والعمل جميعًا. (الاتقان ج:٢ ص ١٧٦)

"हमने क़ुरआन और इल्म व अमल साथ-साथ सीखा है।"

चुनाँचे मुवत्ता इमाम मालिक रह. में रिवायत है कि हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु अन्हु ने सिर्फ़ सूरः ब-क़रह याद करने में पूरे आठ साल ख़र्च किये, और मुस्नद अहमद में हज़रत अनस रज़ियल्लाहु अन्हु फ़रमाते हैं कि "हम में से जो शख़्स सूरः ब-क़रह और सूरः आले इमरान पढ़ लेता हमारी निगाहों में उसका मर्तबा बहुत बुलन्द हो जाता था।" (अल-इतक़ान जिल्द 2 पेज 176)

ग़ौर करने की बात यह है कि ये हज़राते सहाबा रज़ियल्लाहु अन्हुम जिनकी मातृभाषा अरबी थी, जो अरबी के शे'र व अदब में पूरी महारत रखते थे और जिनको लम्बे-लम्बे क़सीदे मामूली तवज्जोह से ज़बानी याद हो जाया करते थे, उन्हें क़ुरआने करीम को याद करने और उसके मायने समझने के लिये इतने लम्बे वक़्त की क्या ज़रूरत थी कि आठ-आठ साल सिर्फ़ एक सूरत पढ़ने में ख़र्च हो जायें? इसकी वजह सिर्फ़ यह थी कि क़ुरआने करीम और इसके उलूम को सीखने के लिये सिर्फ़ अरबी ज़बान की महारत काफ़ी नहीं थी, बल्कि इसके लिये आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की सोहबत और तालीम से फ़ायदा उठाना ज़रूरी था। अब ज़ाहिर है कि जब सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम को अरबी ज़बान की महारत और वही उतरने का डायरेक्ट मुशाहदा (इल्म व अनुभव) करने के बावजूद "आलिमे क़ुरआन" बनने के लिये बाक़ायदा हुज़ूर से तालीम हासिल करने की ज़रूरत थी, तो क़ुरआन नाज़िल होने के सैंकड़ों साल बाद अरबी की मामूली जानकारी और क़ाबलियत पैदा करके या सिर्फ़ तर्जुमे देखकर मुफ़स्सिरे क़ुरआन बनने का दावा कितना बड़ा साहस और इल्म व दीन के साथ कैसा क़ाबिले अफ़सोस मज़ाक़ है? ऐसे लोगों को जो इसकी जुर्रत व साहस करते हैं, सरवरे कायनात सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का यह इरशाद अच्छी तरह याद रखना चाहिये कि:

من قال فى القرآن بغير علم فليتبوأ مقعده فى النار.

मसाईल को निकालना था लेकिन इस ज़िम्न में उन्होंने आयतों की तशरीह, मुश्किल अलफ़ाज़ की तहक़ीक़, एराब व बलाग़त और सम्बन्धित रिवायतों को भी तफ़सीर में ख़ूब जमा किया है। यह किताब बारह जिल्दों में है और बार-बार प्रकाशित हो चुकी है।

तफ़सीरे कबीर

यह इमाम फ़ख़रुद्दीन राज़ी रह. (वफ़ात सन् 606 हिजरी) की तस्नीफ़ है और इसका असली नाम "मफ़ातिहुल-ग़ैब" है लेकिन "तफ़सीरे कबीर" के नाम से मशहूर है। इमाम राज़ी रह. मुतकल्लिमीने इस्लाम के इमाम हैं इसलिये उनकी तफ़सीर में अक़्ली और कलामी मबाहिस और बातिल फ़िर्क़ों की तरदीद पर बहुत ज़ोर दिया गया है, लेकिन हक़ीक़त यह है कि क़ुरआने करीम को हल करने के लिहाज़ से भी यह तफ़सीर अपनी नज़ीर आप है और इसमें जिस दिलनशीं अन्दाज़ में क़ुरआने करीम के माअनों की वज़ाहत और क़ुरआनी आयतों के आपसी ताल्लुक़ की तशरीह की गई है वह बड़ा क़ाबिले क़द्र काम है। ग़ालिब गुमान यह है कि इमाम राज़ी रह. ने सूरः फ़तह तक की तफ़सीर ख़ुद लिखी है उसके बाद वह इसे पूरा न कर सके, चुनाँचे सूरः फ़तह से आख़िर तक का हिस्सा क़ाज़ी शहाबुद्दीन बिन ख़लील अल्-ख़ोली दमिश्क़ी रह. (वफ़ात सन् 639 हिजरी) या शैख़ नजमुद्दीन अहमद बिन मुहम्मद क़मूली रह. (वफ़ात सन् 777 हिजरी) ने मुकम्मल फ़रमाया।

(कश्फ़ुज़्ज़ुनून जिल्द 2 पेज 477)

इमाम राज़ी रह. ने अपने ज़माने की ज़रूरत के मुताबिक़ चूँकि कलामी बहस और बातिल फ़िर्क़ों की तरदीद पर ख़ास ज़ोर दिया है और इस ज़िमन में उनकी बहसें बहुत से मक़ामात पर बहुत लम्बी हो गई हैं, इसलिये कुछ हज़रात ने उनकी तफ़सीर पर यह टिप्पणी की है कि:

فِيهِ كُلُّ شَيْءٍ إِلَّا التَّفْسِيرَ

(इस किताब में तफ़सीर के अलावा सब कुछ है) लेकिन यह टिप्पणी और राय तफ़सीरे कबीर पर बड़ा ज़ुल्म है, और हक़ीक़त वही है जो ऊपर बयान हुई कि क़ुरआन को हल करने के लिहाज़ से भी इस तफ़सीर का मर्तबा बहुत ही बुलन्द है। अलबत्ता कुछ जगहों पर उन्होंने उम्मत के जमहूर उलेमा की राह से हटकर क़ुरआनी आयतों की तफ़सीर की है लेकिन ऐसे मक़ामात आठ मोटी जिल्दों की इस किताब में कहीं-कहीं ही हैं।

तफ़सीर 'अल-बहरुल-मुहीत'

यह अल्लामा अबू हय्यान ग़रनाती अन्दुलुसी रह. (वफ़ात सन् 754 हिजरी) की तस्नीफ़ है जो इस्लामी उलूम के अलावा इल्मे नह्व व बलाग़त में ख़ुसूसी महारत रखते थे, चुनाँचे उनकी तफ़सीर में नह्व व बलाग़त का रंग नुमायाँ है। वह हर आयत के अलफ़ाज़ की

तहक़ीक़, तरकीबों के इख़्तिलाफ़ और बलाग़त के नुक्ते बयान करने पर ख़ास ज़ोर देते हैं।

अहकामुल-क़ुरआन

यह इमाम अबू बक्र जस्सास राज़ी रह. (वफ़ात सन् 370 हिजरी) की तस्नीफ़ है जो हनफ़ी फ़ुक़हा में एक विशेष मक़ाम रखते हैं। उनकी इस किताब का मौज़ू (विषय) क़ुरआने करीम से फ़िक़्ही अहकाम व मसाईल का निकालना है और उन्होंने तरतीबवार आयतों की तफ़सीर के बजाय सिर्फ़ उन आयतों की फ़िक़्ही तफ़सीलात बयान फ़रमाई हैं जो फ़िक़्ही अहकाम पर मुश्तमिल (आधारित) हैं। इस मौज़ू पर और भी कई किताबें लिखी गई हैं लेकिन इस किताब को उन सब में एक नुमायाँ और ख़ास मक़ाम हासिल है।

तफ़सीर 'अद्दुरुल-मन्सूर'

यह अल्लामा जलालुद्दीन सुयूती रह. (वफ़ात सन् 910 हिजरी) की तस्नीफ़ है और इसका पूरा नाम "अद्दुरुल-मन्सूर फ़ित्तफ़सीरि बिल्मासूर" है। इसमें अल्लामा सुयूती रह. ने उन तमाम रिवायतों को एकत्र करने की कोशिश की है जो क़ुरआने करीम की तफ़सीर से मुताल्लिक़ उनको मिली हैं। उनसे पहले बहुत से मुहद्दिसीन जैसे हाफ़िज़ इब्ने जरीर, इमाम बग़वी, इब्ने मरदूया, इब्ने हब्बान और इब्ने माजा रह. वग़ैरह अपने-अपने तौर पर यह काम कर चुके थे। अल्लामा सुयूती रह. ने उन सब की बयान की हुई रिवायतों को इस किताब में जमा कर दिया है, अलबत्ता उन्होंने रिवायतों के साथ उनकी पूरी सनद ज़िक्र करने के बजाय सिर्फ़ उस मुसन्निफ़ (लेखक) का नाम ज़िक्र करने पर इक्तिफ़ा (बस) किया है जिसने उस रिवायत को अपनी सनद से बयान किया है ताकि ज़रूरत के वक़्त उसकी तरफ़ रुजू करके सनद की तहक़ीक़ की जा सके। चूँकि उनका मक़सद रिवायतों के ज़ख़ीरे को एकत्र करना था इसलिये इस किताब में सही व कमज़ोर हर तरह की रिवायतें जमा हो गई हैं और सनद की तहक़ीक़ किये बग़ैर उनकी बयान की हुई हर रिवायत को क़ाबिले एतिमाद नहीं समझा जा सकता। अल्लामा सुयूती रह. बाज़ मर्तबा हर रिवायत के साथ यह भी बता देते हैं कि इसकी सनद किस दर्जे की है, लेकिन चूँकि हदीस की परख के मामले में वह काफ़ी ढीले मशहूर हैं इसलिये उस पर भी पूरी तरह भरोसा करना मुश्किल है।

तफ़सीरे मज़हरी

यह अल्लामा क़ाज़ी सनाउल्लाह साहिब पानीपती रह. (वफ़ात सन् 1225 हिजरी) की तस्नीफ़ है और उन्होंने अपने शैख़े तरीक़त मिर्ज़ा मज़हर जाने जानाँ देहलवी रह. के नाम पर इस तफ़सीर का नाम "तफ़सीरे मज़हरी" रखा है। उनकी यह तफ़सीर बहुत सादा और वाज़ेह है और संक्षिप्त तौर पर क़ुरआनी आयतों की तशरीह मालूम करने के लिये बहुत ही

मुफ़ीद है, उन्होंने क़ुरआनी अलफ़ाज़ की तशरीह के साथ सम्बन्धित रिवायतों को भी काफ़ी तफ़सील से ज़िक्र किया है और दूसरी तफ़सीरों के मुक़ाबले में ज़्यादा छान-फटक कर रिवायतें लेने की कोशिश की है।

तफ़सीर रूहुल-मआनी

इसका पूरा नाम "रूहुल-मआनी फ़ी तफ़सीरिल् क़ुरआनिल् अ़ज़ीमि वस्सबअ़िल-मसानी" है और यह बग़दाद के आख़िरी दौर के मशहूर आ़लिम अ़ल्लामा महमूद आलूसी रह. (वफ़ात सन् 1270 हिजरी) की तस्नीफ़ है और तीस जिल्दों पर मुश्तमिल है। उन्होंने अपनी इस तफ़सीर को बड़ी हद तक जामे बनाने की कोशिश की है। लुग़त, नह्व, अदब और बलाग़त के अ़लावा फ़िक़्ह, अ़क़ाइद, कलाम, फ़ल्सफ़ा और हैयत, तसव्वुफ़ और सम्बन्धित रिवायतों पर भी तफ़सीली बहसें की हैं, और कोशिश यह की है कि आयत से मुताल्लिक़ कोई इल्मी गोशा नामुकम्मल न रहे। हदीस की रिवायतों के मामले में भी इसके मुसन्निफ़ ने दूसरे मुफ़स्सिरों के मुक़ाबले में एहतियात से काम लिया है। इस लिहाज़ से यह बड़ी जामे तफ़सीर है और अब तफ़सीरे क़ुरआन के सिलसिले में कोई भी काम इसकी मदद से बेनियाज़ (बेपरवाह) नहीं हो सकता।

तमहीद

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ○

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ عَدَدَ خَلْقِهٖ وَزِنَةَ عَرْشِهٖ وَمِدَادَ كَلِمَاتِهٖ وَرِضٰى نَفْسِهٖ والصَّلٰوةُ وَالسَّلَامُ عَلٰى صَفْوَةِ رُسُلِهٖ وَخَيْرِ خَلْقِهٖ سَيِّدِنَا مُحَمَّدٍ وَّاٰلِهٖ وَصَحْبِهٖ وَجَمِيْعِ الْاَنْبِيَآءِ وَالْمُرْسَلِيْنَ○ اَمَّا بَعْدُ!

दुनिया की सबसे बड़ी नेमत क़ुरआन है

क़ुरआने करीम इस जहान में वह अनमोल नेमत है कि सारा जहान, आसमान व ज़मीन और इनमें पैदा होने वाली मख़्लूक़ात इसका बदल नहीं बन सकती।

इनसान की सबसे बड़ी नेकबख़्ती और ख़ुशनसीबी अपनी कोशिश भर क़ुरआने करीम में मशग़ूल रहना और इसको हासिल करना है। और सबसे बड़ी बदबख़्ती व मेहरूमी इससे मुँह मोड़ना और इसे छोड़ना है। इसलिये हर मुसलमान को इसकी फ़िक्र तो फ़र्ज़े-ऐन और ज़रूरी है कि क़ुरआने करीम को अलफ़ाज़ की सही अदायेगी के साथ पढ़ने और औलाद को पढ़ाने की कोशिश करे, और फिर जिस क़द्र मुम्किन हो इसके मायने और अहकाम को समझने और उन पर अमल करने की फ़िक्र में लगा रहे, और इसको अपनी पूरी उम्र का वज़ीफ़ा (मामूल व मक़सद) बनाये। और अपने हौसले और हिम्मत के मुताबिक़ इसका जो हिस्सा भी नसीब हो जाये उसको इस जहान की सबसे बड़ी नेमत समझे।

मुसन्निफ़ के मुख़्तसर हालात

(अपने ही क़लम से)

नाकारा-ए-ख़लाईक़ बन्दा मुहम्मद शफ़ी पुत्र मौलाना मुहम्मद यासीन साहिब रह. इस नेमत का शुक्र अदा नहीं कर सकता कि हक़ तआला ने उसकी जन्म-भूमि और वतन इस्लामी उलूम के मर्कज़ (केन्द्र और मुख्य स्थान) देवबन्द को बनाया, और ऐसे वालिदे मोहतरम की गोद में परवरिश का मौक़ा अता फ़रमाया जो हाफ़िज़े क़ुरआन और आलिमे दीन होने के साथ दारुल-उलूम देवबन्द के हम-उम्र थे। दारुल-उलूम के संस्थापकों अल्लाह वाले उलेमा की सोहबतों से लाभान्वित होने के मौक़े उनको हमेशा मयस्सर रहे। उनका वजूद उन बुज़ुर्गों का ज़िन्दा तज़किरा था और उनकी ज़िन्दगी बचपन से वफ़ात तक दारुल-उलूम देवबन्द ही में पूरी हुई, वहीं तालीम हासिल की, वहीं शिक्षक बनकर सारी उम्र तालीम की ख़िदमत अन्जाम दी।

अहक़र की शुरूआती क़ुरआनी तालीम वालिदे मोहतरम की तजवीज़ से दारुल-उलूम के क़ुरआन के उस्ताज़ों हाफ़िज़ अब्दुल-अज़ीम साहिब और हाफ़िज़ नामदार ख़ाँ साहिब रह. के पास हुई और फिर ख़ुद वालिदे मोहतरम की ख़िदमत में रहकर उर्दू, फ़ारसी, हिसाब, रियाज़ी और अरबी की शुरूआती तालीम हासिल की। फिर सन् 1331 हिजरी में दारुल-उलूम के दर्जा-ए-अरबी में बाक़ायदा दाख़िला लेकर सन् 1335 हिजरी तक 'दर्से निज़ामी' का कोर्स उन माहिरे फ़न उस्तादों की ख़िदमत में रहकर पूरा किया जिनकी नज़ीर (जोड़ और मिसाल) आज दुनिया के किसी कोने और इलाक़े में मिलना मुश्किल है। बचपन से लेकर अरबी के मध्य दर्जों तक की तालीम के वक़्त तक शैख़ुल-अरब वल-अजम सैयदी हज़रत मौलाना महमूदुल-हसन साहिब "शैख़ुल-हिन्द" क़ुद्दिस सिर्रुहू की ख़िदमत में हाज़िरी दी, कभी-कभी बुख़ारी शरीफ़ के सबक़ की ग़ैर-रस्मी (अनौपचारिक) हाज़िरी नसीब रही। मालटा जेल से वापस तशरीफ़ लाने के बाद उन्हीं के हक़ परस्त हाथों पर बैअत नसीब हुई और अरबी उलूम की बाक़ायदा तालीम निम्न लिखित हज़रात से हासिल की।

हाफ़िज़े हदीस, उलूम के जामे हज़रत अल्लामा मौलाना मुहम्मद अनवर शाह कश्मीरी, आरिफ़ बिल्लाह हज़रत मौलाना मुफ़्ती अज़ीज़ुर्रहमान साहिब, आलिमे रब्बानी हज़रत मौलाना सैयद असग़र हुसैन साहिब, शैख़ुल इस्लाम हज़रत मौलाना शब्बीर अहमद साहिब उस्मानी, शैख़ुल-अदब वल-फ़िक़ा हज़रत मौलाना मुहम्मद एज़ाज़ अली साहिब रहमतुल्लाह अलैहिम अजमईन। और माक़ूली व मन्क़ूली उलूम के माहिर हज़रत अल्लामा मुहम्मद इब्राहीम साहिब और हज़रत मौलाना मुहम्मद रसूल ख़ान साहिब। अफ़सोस है कि इस मज़मून के

लिखे जाने के वक़्त आख़िर में ज़िक्र हुए दो बुज़ुर्गों के सिवा सब इस फ़ानी जहान से कूच फ़रमा चुके हैं, हक़ तआला इन दोनों बुज़ुर्गों का साया देर तक आफ़ियत के साथ क़ायम रखें और उलेमा को इनसे फ़ैज़याब होने (फ़ायदा उठाने) का ज़्यादा से ज़्यादा मौक़ा अता फ़रमायें।

नोटः- 23 शाबान सन् 1392 हिजरी को जबकि इस तफ़सीर 'मआरिफ़ुल-क़ुरआन' पर दोबारा निगाह डालने का काम शुरू हुआ तो ये दोनों बुज़ुर्ग भी रुख़्सत हो चुके हैं। हक़ तआला इनको अपनी रहमत में जगह अता फ़रमायें और बुलन्द दर्जे नसीब फ़रमायें।

उस्तादों और दारुल-उलूम के बुज़ुर्गों की शफ़क़त व इनायत की नज़र पहले ही से इस नाकारा पर रहती थी। सन् 1336 हिजरी में अहक़र ने फ़ुनून की बक़िया चन्द किताबें क़ाज़ी, मीर ज़ाहिद और उमूरे आम्मा वग़ैरह पढ़ना शुरू किया था कि उसी साल में दारुल-उलूम के बड़ों ने अहक़र को कुछ सबक़ पढ़ाने के लिये दे दिये, इस तरह सन् 1336 हिजरी मेरे पढ़ने और पढ़ाने का संयुक्त साल था। सन् 1337 हिजरी से बाक़ायदा दारुल-उलूम में पढ़ाने की ख़िदमत पर लगा दिया गया। बारह साल लगातार विभिन्न उलूम व फ़ुनून की दरमियाना व आला दर्जों की किताबों के पढ़ाने की ख़िदमत अन्जाम दी। सन् 1349 हिजरी में मुझे सदर-मुफ़्ती (मुख्य मुफ़्ती) की हैसियत से दारुल-उलूम का फ़तवे का पद सुपुर्द किया गया, इसके साथ कुछ किताबें हदीस व तफ़सीर की भी पढ़ाता रहा और आख़िरकार सन् 1362 हिजरी में पाकिस्तान-आंदोलन की जिद्दोजहद और कुछ दूसरे कारणों की वजह से दारुल-उलूम से त्याग पत्र दे दिया।

दारुल-उलूम की छब्बीस वर्षीय पढ़ाने और फ़तवे लिखने की ख़िदमत के साथ ख़ास-ख़ास विषयों पर तस्नीफ़ (किताबें लिखने) का भी सिलसिला जारी रहा, इन तमाम मश्ग़लों और दारुल-उलूम के बुज़ुर्गों की सोहबत से अपने हौसले के मुताबिक़ क़ुरआन व हदीस से कुछ मुनासबत हो गई थी। मुजद्दिदे मिल्लत हकीमुल-उम्मत सैयदी हज़रत मौलाना अशरफ़ अली थानवी रहमतुल्लाहि अलैहि की ख़िदमत में हाज़िरी का गौरव तो तालिब-इल्मी के ज़माने में भी होता रहता था मगर सन् 1346 हिजरी से दोबारा बैअ़त के साथ लगातार हाज़िर होने का शर्फ़ हासिल हुआ जो तक़रीबन बीस साल हज़रते अक़्दस की वफ़ात रजब सन् 1362 हिजरी तक जारी रहा। हज़रत क़ुद्दि-स सिर्रुहू को हक़ तआला ने तमाम उलूम व फ़ुनून की कामिल महारत अता फ़रमाई थी और उनमें से ख़ुसूसन तफ़सीर और तसव्वुफ़ आपके मख़्सूस फ़न थे, इन दोनों उलूम में आपकी किताबें बयानुल-क़ुरआन, अत्तकश्शुफ़ और अत्तशर्रुफ़ और तसव्वुफ़ के दूसरे रिसाले इसका काफ़ी सुबूत हैं। हज़रत क़ुद्दि-स सिर्रुहू ने अपनी उम्र के आख़िर में यह ज़रूरत महसूस फ़रमाई कि अहकामे-क़ुरआन पर कोई ऐसी किताब लिखी जाये जिसमें मौजूदा ज़माने के मसाईल को भी जिस क़द्र क़ुरआने करीम से साबित होते हैं वाज़ेह किया जाये, इस काम को जल्द पूरा कराने के

ख़्याल से चन्द हज़रात में तक़सीम फ़रमाया, उसका एक हिस्सा अहक़र के भी सुपुर्द हुआ जिसका कुछ हिस्सा तो हज़रत क़ुद्दि-स सिर्रुहू की ज़िन्दगी ही में आपकी निगरानी में लिखा गया, बाक़ी हज़रत की वफ़ात के बाद अल्लाह के फ़ज़्ल व मदद से पूरा हो गया और दो जिल्दों में प्रकाशित भी हो चुका है। यह मजमूआ अरबी ज़बान में है।

इस सिलसिले ने हज़रत रह. की बरकत से अल्लाह के फ़ज़्ल से क़ुरआने करीम के साथ एक ख़ास विषेश ताल्लुक़ और तलब पैदा कर दी। उसके बाद तक़दीर का फ़ैसला कि ज़िन्दगी में एक नये इन्क़िलाब (बदलाव) का दरवाज़ा खुला, सन् 1365 हिजरी यानी 1946 ई. में पाकिस्तान की तहरीक (आंदोलन) तेज़ी पकड़कर पूरे मुल्क में फैली। हज़रत थानवी के पहले दिये गये इशारे और मौजूदा अकाबिर के इरशाद पर उस तहरीक में हिस्सा लिया और दो साल रात-दिन की मेहनत व जिद्दोजहद उसमें लगाई। मद्रास से पेशावर तक और पश्चिम में कराची तक पूरे मुल्क के दौरे किये, यही तहरीके पाकिस्तान और इसकी जिद्दोजहद आख़िरकार दारुल-उलूम देवबन्द से त्याग पत्र देने पर ख़त्म हुई और अंततः अल्लाह तआला ने मुसलमानों की यह पुरानी और दिली तमन्ना पूरी फ़रमा दी कि हिन्दुस्तान तक़सीम होकर मुसलमानों के लिये ख़ालिस इस्लाम के नाम पर दुनिया की सबसे बड़ी इस्लामी सल्तनत पाकिस्तान के नाम से वजूद में आ गई।

इस्लामी सल्तनत, इस्लामी निज़ाम, इस्लामी क़ानून की पुरानी तमन्नायें अब उम्मीद की सूरत में तब्दील होने लगीं, और इसके साथ असली वतन को छोड़ने और पाकिस्तान को वतन बनाने की कश्मकश दिल में जोश मारने लगी। वतने असली देवबन्द के उलूमे इस्लामिया का मर्कज़ (केन्द्र) और चुनिन्दा उलेमा-ए-उम्मत का मरजा होने पर नज़र जाती तो सअ़दी शीराज़ी रह. का यह शे'र याद आता:

तवल्ला-ए-मर्दाने ईं पाक बूम
बर-अंगेख़्तम् ख़ातिर अज़ शाम व रूम

'इस पाक जगह की मुहब्बत में मैंने शाम व रूम (यानी दुनिया के तरक़्क़ी याफ़्ता और चमक-दमक के इलाक़ों) को भी दिल से निकाल दिया।' **(मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी)**

लेकिन जब मुल्क के सियासी हालात और हिन्दुस्तान में मुसलमानों और उनके इदारों के मुस्तक़बिल (भविष्य) पर नज़र जाती तो कोई रोशन पहलू सामने न आता। इसके ख़िलाफ़ पाकिस्तान में हर तरह की बेहतरी व कामयाबी की उम्मीद ज़ाहिरी असबाब को देखते हुए नज़र आती थी। इधर यह कश्मकश जारी थी और दूसरी तरफ़ पूरे मुल्क में बद-अमनी (अशांति) और क़त्ल व ग़ारतगरी के क़ियामत ढाने वाले हंगामे खड़े हो गये। हिन्दुस्तान में मुसलमानों पर ज़िन्दगी को तंग कर दिया गया, लाखों इनसानों को ज़बरदस्ती पाकिस्तान की तरफ़ धकेल दिया गया और फिर जाने वालों को आफ़ियत के साथ जाने का मौक़ा भी न दिया गया, जगह-जगह क़त्ले आम, ख़ूँरेज़ी, लूटमार और अग़वा के रूह तड़पा

देने वाले नज़ारे थे। किसी का सही सालिम पाकिस्तान पहुँच जाना एक अजूबा या चमत्कार समझा जाता था। आठ माह के बाद ये हंगामे कुछ ठण्डे पड़े तो मेरे उस्तादे मोहतरम और फूफी ज़ाद भाई शैख़ुल-इस्लाम हज़रत मौलाना शब्बीर अहमद उस्मानी रह. और कराची के चन्द ज़िम्मेदारों ने यह इरादा किया कि पाकिस्तान के लिये इस्लामी दस्तूर का एक ख़ाका मुरत्तब करके हुकूमत के सामने रखा जाये ताकि जिस मक़सद के लिये पाकिस्तान बना है वह जल्द से जल्द पूरा हो सके। इस तजवीज़ के लिये चन्द उलेमा के साथ अहक़र को भी हिन्दुस्तान से कराची आने की दावत दी गई।

20 जमादिउस्सानी सन् 1367 हिजरी (1 मई सन् 1948 ई:) मेरी उम्र में बहुत बड़े इन्क़िलाब (बदलाव) का दिन था जिसमें अपने असली वतन, उलूम के मर्कज़ देवबन्द को ख़ैरबाद कहकर सिर्फ़ छोटे बच्चों और वालिदा को साथ लेकर पाकिस्तान का रुख़ किया। वालिदा मोहतरमा और अक्सर औलाद और सब अज़ीज़ों और घरबार को छोड़ने का दिल को रुला देने वाला मन्ज़र और जिस तरफ़ जा रहा हूँ वहाँ एक पराये और मुसाफ़िर की हैसियत से वक़्त गुज़ारने की मुश्किलों के साथ एक नई इस्लामी हुकूमत का वजूद और उसमें दीनी रुझानों के अमल में आने की ख़ुश करने वाली उम्मीदों के मिले-जुले ख़्यालात में हिचकोले खाते हुए देहली और चन्द मक़ामात पर उतरते हुए 26 जमादिउस्सानी सन् 1367 हिजरी (6 मई सन् 1948 ई.) को अल्लाह तआला ने पाकिस्तान की सीमाओं में पहुँचा दिया और कराची ग़ैर-इख़्तियारी तौर पर अपना वतन बन गया।

यहाँ आये हुए इस वक़्त पन्द्रह साल पूरे होकर तीन माह ज़्यादा हो रहे हैं। इस पन्द्रह साल में क्या किया और क्या देखा, इसकी कहानी बहुत लम्बी है, यह मक़ाम उसके लिखने का नहीं, जिन मक़ासिद के लिये पाकिस्तान महबूब व मतलूब था और इसके लिये सब कुछ क़ुरबान कर दिया था, हुकूमतों के इन्क़िलाबात (उलट-फेर) ने उनकी हैसियत एक मज़ेदार सपने से ज़्यादा बाक़ी न छोड़ी:

बुलबुल हमा-तन ख़ूँ शुद व गुल शुद हमा-तन चाक
ऐ वाये बहारे अगर ईं अस्त बहारे

'बुलबुल बुरी तरह ज़ख़्मी है और फूल मसले पड़े हैं अगर इसी का नाम बहार है तो ऐसी बहार पर अफ़सोस व हसरत है।' (मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी)

हुकूमत के रास्ते से किसी दीनी इन्क़िलाब और नुमायाँ सुधार की उम्मीदें ख़्वाब व ख़्याल होती जाती हैं, फिर भी आम मुसलमानों में दीनी जागरुकता और दीनी मामलात का एहसास अल्लाह का शुक्र है अभी तक सरमाया-ए-ज़िन्दगी बना हुआ है। उनमें नेक व परहेज़गार लोगों की बिहम्दिल्लाह अच्छी-ख़ासी तादाद मौजूद है। इसी एहसास ने यहाँ दीनी ख़िदमतों की राहें खोली हुई हैं।

हुकूमत के स्तर पर सुधारक कोशिशों के अलावा अवामी तर्ज़ से इस्लाही जिद्दोजहद

और उसके लिये कुछ इदारों का क़ियाम जो शुरू से पेशे-नज़र था उसकी शुरूआत सन् 1370 हिजरी (सन् 1950 ई.) में इस तरह हुई कि आराम बाग़ कराची के क़रीब मस्जिद बाबुल-इस्लाम में रोज़ाना सुबह के बाद दर्से-क़ुरआन शुरू हुआ और हर तरफ़ से आने वाले सवालात के जवाबात में जो फ़तवे लगातार लिखे जाते और बग़ैर नक़ल के रवाना कर दिये जाते थे, अब इसका इन्तिज़ाम इसी मस्जिद में एक दारुल-इफ़्ता की स्थापना की सूरत में अमल में आया। यह दर्से-क़ुरआन (क़ुरआनी तालीम व तफ़सीर) उम्मीद से ज़्यादा मुफ़ीद व असरदार साबित हुआ, सुनने वालों की ज़िन्दगी में इन्क़िलाब (बदलाव) के आसार देखे गये। अहक़र नाकारा को ज़िन्दगी का एक अच्छा मश्ग़ला मिल गया, फ़जर की नमाज़ के बाद रोज़ाना एक घन्टे के अमल से सात साल में अल्लाह के करम से यह दर्से-क़ुरआन मुकम्मल हो गया।

यहाँ तक की तमहीद माह सफ़र सन् 1383 हिजरी में उस वक़्त लिखी गई थी जबकि तफ़सीर 'मआरिफ़ुल-क़ुरआन' को किताबी सूरत में लाने का इरादा हुआ था, फिर सन् 1388 हिजरी तक यह सिलसिला मुल्तवी (स्थगित) रहा। सन् 1388 हिजरी से इस पर काम शुरू हुआ जो सन् 1392 हिजरी तक पाँच साल में अल्लाह के करम से मुकम्मल हो गया। इस तमहीद का आगे आने वाला हिस्सा तफ़सीर के मुकम्मल होने के बाद सन् 1392 हिजरी में लिखा गया।

तफ़सीर "मआरिफ़ुल-क़ुरआन" लिखने के क़ुदरती असबाब

अहक़र नाकारा गुनाहगार बे-इल्म व अमल की यह जुर्रत कभी भी न होती कि क़ुरआने करीम की तफ़सीर लिखने का इरादा करता मगर तक़दीर से इसके असबाब इस तरह शुरू हुए कि रेडियो पाकिस्तान से रोज़ाना प्रसारित होने वाले दर्से-क़ुरआन के मुताल्लिक़ मुझसे फ़रमाईश की गई, जिसको चन्द उज़्र (मजबूरियों) की बिना पर मैं क़ुबूल न कर सका। फिर उन्होंने एक दूसरा प्रस्ताव पेश किया कि रोज़ाना दर्स के सिलसिले से अलग एक साप्ताहिक दर्स 'मआरिफ़ुल-क़ुरआन' के नाम से जारी किया जाये, जिसमें पूरे क़ुरआन की तफ़सीर पेशे-नज़र न हो बल्कि आम मुसलमानों की मौजूदा ज़रूरत को देखते हुए ख़ास-ख़ास आयतों का चयन करके उनकी तफ़सीर और संबन्धित अहकाम बयान हुआ करें। अहक़र ने इसको इस शर्त के साथ मन्ज़ूर कर लिया कि दर्स का कोई मुआवज़ा न लूँगा और किसी ऐसी पाबन्दी को भी क़ुबूल न करूँगा जो मेरे नज़दीक दर्से-क़ुरआन के मुनासिब न हो। यह शर्त मन्ज़ूर कर ली गई।

अल्लाह तआला का नाम लेकर यह दर्स मआरिफ़ुल-क़ुरआन के नाम से 3 शव्वाल

सन् 1373 हिजरी (2 जुलाई सन् 1954 ई.) से शुरू हुआ और तक़रीबन ग्यारह साल पाबन्दी से जारी रहा, यहाँ तक कि जून सन् 1964 ई. में रेडियो पाकिस्तान की अपनी नई पॉलीसी के तहत इस दर्स को ख़त्म कर दिया गया। यह दर्स मआरिफ़ुल-क़ुरआन तेहरवें पारे और सूरः इब्राहीम पर ख़त्म हो गया, जिसमें उन तेरह पारों की मुकम्मल तफ़सीर नहीं बल्कि चुनिन्दा आयतों की तफ़सीर थी। अहक़र ने ऐसी बीच की आयतों को उसमें शामिल नहीं किया था जो ख़ालिस इल्मी मज़ामीन पर मुश्तमिल थीं और रेडियाई तक़रीर के ज़रिये अवाम के ज़ेहन में बैठाना उनका मुश्किल था, या वे आयतें जो बार-बार आती हैं।

जिस वक़्त यह काम शुरू कर रहा था इसका कोई दूर-दूर ख़्याल न था कि यह किसी वक़्त किताबी सूरत में एक मुस्तक़िल तफ़सीर के अन्दाज़ पर प्रकाशित होगी। मगर हुआ यह कि जब यह दर्स प्रसारित होना शुरू हुआ तो पाकिस्तान के सब इलाक़ों और उनसे ज़्यादा ग़ैर-मुल्कों अफ़्रीक़ा, यूरोप वग़ैरह में बसने वाले मुसलमानों की तरफ़ से बेशुमार ख़त रेडियो पाकिस्तान को और ख़ुद अहक़र को वसूल हुए जिनसे मालूम हुआ कि बहुत से दीनदार और जदीद तालीम-याफ़्ता मुसलमान इस दर्स से बहुत लगाव रखते हैं। अफ़्रीक़ा में चूँकि यह दर्स (बयान) रात के आख़िरी हिस्से या बिल्कुल सुबह सादिक़ के वक़्त पहुँचता था, वहाँ के लोगों ने इसको टेपरिकॉर्डर के ज़रिये महफ़ूज़ करके बाद में सब को बार-बार सुनाने का एहतिमाम किया और जगह-जगह से इसका तक़ाज़ा हुआ कि इस दर्स को किताबी सूरत में शाया किया जाये। आम मुसलमानों के इस शौक़ व दिलचस्पी ने इस नाकारा की हिम्मत बढ़ा दी और बीमारियों व कमज़ोरी के बावजूद ग्यारह साल तक यह सिलसिला बड़ी पाबन्दी से जारी रखा। सन् 1383 हिजरी (1964 ई.) में जब दर्स का सिलसिला बन्द हुआ तो बहुत से हज़रात की तरफ़ से यह तक़ाज़ा हुआ कि जितना हो चुका है उसको किताबी सूरत में शाया (प्रकाशित) किया जाये और दरमियान में जो आयतें छोड़ी गई हैं उनकी भी तक्मील कर दी जाये। अल्लाह का नाम लेकर यह इरादा कर लिया कि मौजूदा मसौदे पर नज़रे-सानी और बीच की बाक़ी रही आयतों की तक्मील का काम शुरू किया जाये। चुनाँचे 16 सफ़र सन् 1383 हिजरी में सूरः फ़ातिहा की तफ़सीर पर नज़रे-सानी (दोबारा निगाह डालना) मुकम्मल हो गई और सूरः ब-क़रह पर काम शुरू किया। उसमें अहकाम की मुश्किल आयतें बहुत हैं जो रेडियो पर प्रसारित होने वाली तक़रीर में नहीं आई थीं, यह काम बहुत मेहनत और फ़ुर्सत को चाहता था, कामों की अधिकता और बीमारियों ने फ़ुर्सत न दी और यह काम तक़रीबन ठण्डे बस्ते में पड़ गया।

तक़दीर का करिश्मा, एक सख़्त और लम्बी बीमारी तफ़सीर को पूरा करने का सबब बन गई

सन् 1388 हिजरी के शाबान में अहक़र के बदन के निचले हिस्से में कुछ फोड़े की

शक्ल ज़ाहिर हुई और धीरे-धीरे बढ़ती गई, आख़िर रमज़ान में उसने खड़े होने से माज़ूर कर दिया, आख़िरी आठ रोज़े भी क़ज़ा हुए। घर में बैठकर नमाज़ होने लगी, इसके साथ पाँव में निक़रस का पुराना दर्द शुरू हुआ, उसका जो इलाज पहले कारगर हो जाता था वह भी कामयाब न हुआ और दोनों पाँव से माज़ूर हो गया। तक़रीबन दस महीने इसी तरह माज़ूरी व बीमारी के साथ ज़िन्दगी और मौत की कश्मकश में गुज़रे। जब चलने फिरने और हर काम से माज़ूर हो गया, ज़िन्दगी की उम्मीद भी ख़त्म हो गई तो अब इस पर अफ़सोस हुआ कि ये तफ़सीरी काम जिस क़द्र हो चुका था उस पर नज़रे-सानी और तक्मील भी न हो सकी। अब ये लिखे हुए पन्ने यूँ ही ज़ाया हो जायेंगे। हक़ तआला ने दिल में हिम्मत अता फ़रमाई और शव्वाल सन् 1388 हिजरी के आख़िर में बीमारी के बिस्तर पर ही अल्लाह तआला ने इस काम को शुरू करा दिया और 25 ज़ीक़ादा सन् 1388 हिजरी को सूरः ब-क़रह की तक्मील होकर लिखाई व छपाई के लिये दे दी, इसके बाद से ऐन बीमारी व माज़ूरी की हालत में यह काम धीमी रफ़्तार से चलता रहा, अल्लाह तआला ने इसकी बरकत से दस महीने के बाद माज़ूरी भी दूर फ़रमा दी तो रजब सन् 1389 हिजरी से काम किसी क़द्र तेज़ हुआ मगर उसी के साथ मुल्क में नये चुनावों ने सियासी हंगामों का एक तूफ़ान खड़ा कर दिया, मैं अगरचे लम्बे समय से सियासत से किनारे हो चुका था मगर उन चुनावों ने पाकिस्तान में ख़ालिस इस्लामी हुकूमत के बजाय कम्यूनिज़्म और सोशलिज़्म फैल जाने के ख़तरे प्रबल कर दिये और सोशलिज़्म को इस्लाम के बिल्कुल मुवाफ़िक़ बताने और यक़ीन दिलाने के लिये जिद्दोजहद और जलसे व जलूस आम हो गये। इस मसले की नज़ाकत ने फिर इस पर तैयार किया कि कम से कम इस्लाम और सोशलिज़्म में फ़र्क़ और सोशलिज़्म के ख़तरनाक परिणामों से क़ौम को आगाह करने की हद तक इस सियासी मैदान में हिस्सा लिया जाये। इसके लिये तहरीरी मज़ामीन भी लिखने पड़े और पूर्वी व पश्चिमी पाकिस्तान के अहम मक़ामात में जलसों में शिर्कत भी करनी पड़ी। मसले की वज़ाहत तो अपनी हिम्मत भर पूरी हो गई मगर सियासत के मैदान में मसाईल और तथ्यों से ज़्यादा ताक़त और दौलत काम करते हैं, चुनावों का नतीजा उम्मीद के बिल्कुल उलट और विपरीत निकला, उसके असर से पाकिस्तान पर जो ज़वाल (तबाही और पतन) आना था वह आ गया। कहना चाहिये कि मामलात की तमाम सूरतें अल्लाह ही के हाथ में हैं, वह जिस तरह चाहता है उसी तरह होता है।

चुनावों के बाद अहक़र ने फिर सियासत से इस्तीफ़ा देकर अपना यह काम शुरू कर दिया और अल्हम्दु लिल्लाह रजब सन् 1390 हिजरी तक तेरह पारों की मआरिफ़ुल-क़ुरआन पर नज़रे-सानी और बीच की छूटी हुई आयतों की तफ़सीर भी मुकम्मल हो गई और सूरः इब्राहीम से सूरः नहल तक दो पारों की मज़ीद तफ़सीर भी लिखी गई। अब क़ुरआन मजीद आधे के क़रीब हो गया तो अल्लाह तआला ने हिम्मत अता फ़रमाई और बाक़ी बचे

क़ुरआन की तफ़सीर लिखनी शुरू की। इसका उस वक़्त कोई तसव्वुर नहीं था कि पछत्तर साल की उम्र और जिस्मानी कमज़ोरी साथ ही विभिन्न क़िस्म की बीमारियों के बावजूद यह तफ़सीर पूरी हो सकेगी, मगर यह समझकर कि क़ुरआन को ख़त्म करना मक़सूद नहीं क़ुरआन में अपनी उम्र को ख़त्म करना है, अल्लाह के नाम पर यह सिलसिला शुरू कर दिया। शाबान सन् 1390 हिजरी से सूरः बनी इस्राईल की तफ़सीर शुरू हुई और 23 सफ़र सन् 1391 हिजरी को क़ुरआन की चौथी मन्ज़िल सूरः फ़ुरक़ान पारा 19 तक मुकम्मल हो गई।

आगे क़ुरआने करीम की तीन मन्ज़िलें यानी तक़रीबन एक तिहाई क़ुरआन बाक़ी था, उम्र की कमज़ोरी और मुख़्तलिफ़ क़िस्म की बीमारियों की बिना पर यह ख़्याल आया कि इस सब की तक्मील तो शायद मुझसे न हो सकेगी मगर बीच की पाँचवीं और छठी मन्ज़िल की तफ़सीर अहक़र ने अहकामुल-क़ुरआन में अरबी भाषा में लिख दी है जो प्रकाशित भी हो चुकी है, अगर मैं इसको न लिख सका तो मेरे बाद भी कोई अल्लाह का बन्दा उसी अहकामुल-क़ुरआन की तफ़सीर को उर्दू में मुन्तक़िल करके यह हिस्सा पूरा कर देगा और इसकी वसीयत भी चन्द हज़रात को कर दी और बीच की ये दो मन्ज़िलें छोड़कर आख़िरी सातवीं मन्ज़िल सूरः क़ॉफ़ से लिखनी शुरू कर दी। हक़ तआला की मदद ने साथ दिया और 12 रबीउल-अव्वल सन् 1391 हिजरी से शुरू होकर शव्वाल सन् 1391 हिजरी तक यह आख़िरी मन्ज़िल पूरी हो गई। सिर्फ़ आख़िर की दो सूरतें (सूरः फ़लक़ और सूरः नास) छोड़ दी गईं।

अब बीच की दो मन्ज़िलें सूरः शु-अरा से सूरः हुजुरात तक बाक़ी थीं, अल्लाह के नाम पर उनको भी शुरू कर दिया। उनमें सूरः सॉद, सॉफ़्फ़ात, ज़ुख़्रुफ़ तो बरख़ुरदार अज़ीज़म मौलवी मुहम्मद तक़ी सल्ल-मह्रू से लिखवाईं और ख़ुद उस पर नज़रे-सानी करके मुकम्मल किया। बाक़ी सूरतें ख़ुद लिखनी शुरू कीं और क़ुरआने मजीद का तक़रीबन डेढ़ पारा बाक़ी रह गया था कि 24 रबीउस्सानी सन् 1392 हिजरी (8 जून सन् 1972 ई.) को अचानक मुझे दिल का एक सख़्त मर्ज़ पेश आया कि मौत का नक़्शा आँखों में घूम गया। देखने वाले थोड़ी देर का मेहमान समझते थे, कराची में दिल की बीमारियों के अस्पताल में बेहोशी की हालत में पहुँचाया गया, तीन दिन के बाद डॉक्टरों ने कुछ इत्मीनान का इज़हार किया। जब कुछ होश व हवास दुरुस्त हुए तो बाक़ी बची तफ़सीर का ख़्याल एक हसरत बनकर रह गया। बरख़ुरदार अज़ीज़ी मौलवी मुहम्मद तक़ी सल्ल-मह्रू को वसीयत कर दी कि बाक़ी बची तफ़सीर की तक्मील वह कर दें, इस तरह दिल का कुछ बोझ हल्का हुआ, अल्लाह तआला का हज़ारों हज़ार शुक्रिया कि उसने उस बीमारी से सेहत भी अता फ़रमाई और तीन महीने के बाद इतनी ताक़त दी कि कुछ लिखने पढ़ने की हिम्मत होने लगी, मगर थोड़ी देर काम करने से दिमाग़, दिल और निगाह सब थक जाते थे, महज़ हक़ तआला का

फ़ज़्ल व करम ही था कि उसने उसी हालत में यह बाक़ीया तफ़सीर 21 शाबान सन् 1392 हिजरी दिन पीर को मुकम्मल करा दी, और एक हसीन इत्तिफ़ाक़ यह कि यही दिन सन् 1314 हिजरी में मेरी पैदाईश का दिन था। उस रोज़ मेरी उम्र की 77 मन्ज़िलें पूरी होकर 78वाँ साल शुरू हुआ।

इस तफ़सीर का आग़ाज़ (शुरूआत) सन् 1388 हिजरी की सख़्त बीमारी में हुआ और ख़ातमा (समापन) पाँच साल के बाद सन् 1392 हिजरी की सख़्त बीमारी के फ़ौरन बाद हुआ। ये पाँच साल उम्र के आख़िरी हिस्से की तबई कमज़ोरी, अनेक क़िस्म की बीमारियों के लगातार होने, फ़िक्रों के हुजूम और मुल्क में इन्क़िलाबी हंगामों के साल थे, इन्हीं में हक़ तआला ने इस तफ़सीर के तक़रीबन सात हज़ार पेज इस नाकारा के क़लम से लिखवा दिये। यह भी इस हाल में कि दारुल-उलूम कराची की इन्तिज़ामी ज़िम्मेदारियों और फ़तवे की मुस्तक़िल ख़िदमात के अलावा दूसरे अहम विषयों पर दस छोटी-बड़ी किताबें और भी लिखी गईं जो छप चुकी हैं।

1. अहकामुल-हज्ज जो मुख़्तसर और आसान होने के साथ तमाम ज़रूरी अहकाम को जामे भी है।

2. अल-यवाक़ीत फ़ी अहकामिल-मवाक़ीत (हज के मवाक़ीत और जेद्दा से एहराम की तहक़ीक़)।

3. मन्हजुल-ख़ैरि फ़िल्हज्जि अ़निल् ग़ैरि (यानी हज्जे बदल के अहकाम)।

4. मक़ामे सहाबा (सहाबा के आपसी झगड़ों और अदालते सहाबा की मुकम्मल बहस और उम्मत के बुज़ुर्गों का इस बारे में तर्ज़े-अमल)।

5. इस्लामी ज़बीहा (ज़बीहा के शरई अहकाम तफ़सील के साथ, यहूदियों व ईसाईयों के ज़बीहे की बहस, ग़लत मसाईल बयान करने पर रद्द)।

6. इनसानी अंगों की पेवन्दकारी।

7. ज़िन्दगी का बीमा।

8. प्राविडेंट फ़न्ड।

9. इस्लाम और सोशलिज़्म।

10. इस्लामी निज़ाम में आर्थिक सुधार वग़ैरह वग़ैरह। और यह बात आँखों से दिखला दी कि:

ان المقادیر اذا ساعدت الحقت العاجز بالقادر

"यानी जब तक़दीरे इलाही मदद करती है तो आजिज़ को क़ादिर के साथ मिला देती है (यानी कमज़ोर से भी बड़ा काम ले लेती है)।"

इल्म व अमल पहले ही बराय नाम था, इस कमज़ोरी व बुढ़ापे और बीमारियों व मशाग़िल और दिमाग़ी सुस्ती ने वह रहा सहा भी रुख़्सत कर दिया। इन हालात में किसी

किताब लिखने, ख़ास कर क़ुरआने करीम की तफ़सीर का इरादा करना भी एक बड़ी हिम्मत व जुर्रत थी। इत्मीनान इस पर था कि इसमें मेरी अपनी कोई चीज़ नहीं, अकाबिर उलेमा और पहले बुजुर्गों की तफ़सीर को आसान ज़बान में मौजूदा ज़माने की तबीयतों के करीब बनाना मेरी सारी मेहनत का हासिल था। मैंने आख़िर उम्र के पाँच साल की यह ज़बरदस्त मेहनत इस तमन्ना में लगाई कि मौजूदा ज़माने के मुसलमान जो उमूमन इल्मी इस्तिलाहों और इल्मी ज़बान से नावाक़िफ़ और अनजान हो चुके हैं, अकाबिर (उलेमा) की तफ़सीर को उनके लिये समझने के ज़्यादा क़रीब कर दूँ तो शायद इस ज़माने के मुसलमानों को इससे नफ़ा पहुँचे और मेरे लिये आख़िरत का सामान बन जाये। उलेमा-ए-मुहक़्क़िक़ीन अपनी इल्मी तहक़ीक़ात के कमालात दिखलाते हैं, इस नाकारा ने अपनी बेइल्मी को इस पर्दे में छुपाया है, अल्लाह तआला मुझसे अपनी सत्तारी (ख़ताओं को छुपाने) का मामला फ़रमायें और इस नाचीज़ की ख़िदमत को क़ुबूल फ़रमायें जिसमें किसी इल्मी कमाल का तो कोई दख़ल नहीं अलबत्ता अपने आपको थकाया ज़रूर है, और यह थकाना भी अल्लाह की तौफ़ीक़ से था वरना एक क़दम चलने की भी क्या मजाल थी। काश! अल्लाह तआला मेरे इस थकने पर नज़र फ़रमायें और मेरी ग़लती व ख़ताओं को जो उसकी किताबे करीम के हुक़ूक़ अदा करने में हुई हैं माफ़ फ़रमाकर इसको क़ुबूलियत का शर्फ़ अता फ़रमा दें:

किताब लिखने (यानी इस तफ़सीर को तैयार करने) की यह लम्बी कहानी अहक़र के लिये तो एक याददाश्त और शुक्रगुज़ारी के लिये एक तज़किरा है मगर आम लोगों के ज़ौक़ की चीज़ नहीं, इसके बावजूद इसलिये लिखा कि लोगों को मेरे इस साहस व जुर्रत का उज़्र मालूम हो जाये।

जैसा कि पहले अर्ज़ कर चुका हूँ कि तफ़सीरे क़ुरआन पर मुस्तक़िल तस्नीफ़ के लिये जुर्रत करने का मेरे लिये दूर-दूर भी कोई एहतिमाल (ख़्याल व गुमान) नहीं था, मगर ग़ैर-इरादी तौर पर इसके असबाब बनते चले गये। अलबत्ता लम्बे ज़माने से एक तमन्ना दिल में थी कि हकीमुल-उम्मत मुजद्दिदुल-मिल्लत सैयदी हज़रत मौलाना अशरफ़ अली साहिब थानवी रह. की तफ़सीर बयानुल-क़ुरआन जो एक बेनज़ीर, मुख़्तसर मगर जामे तफ़सीर और पहले उलेमा व बुज़ुर्गों की तफ़सीरों का ख़ुलासा और निचोड़ है, लेकिन वह इल्मी ज़बान और इल्मी इस्तिलाहात में लिखी गई है, आजकल के अवाम उससे फ़ायदा उठाने में असमर्थ हो गये हैं, उसके मज़ामीन को आसान ज़बान में पेश कर दिया जाये। मगर यह काम भी काफ़ी मेहनत और फ़ुर्सत चाहता था, पाकिस्तान में आने से पहले कुछ शुरू भी किया फिर रह गया था। मआरिफ़ुल-क़ुरआन की इस तहरीर ने अल्लाह का शुक्र है कि वह आरज़ू भी पूरी कर दी, क्योंकि इस तफ़सीर की बुनियाद अहक़र ने बयानुल-क़ुरआन ही को बनाया है जिसकी तफ़सील आगे आती है।

'मआरिफ़ुल-क़ुरआन' की विशेषतायें

उन बातों का बयान जिनकी इसमें रियायत रखी गयी है

1. क़ुरआन की तफ़सीर जो अरबी के अलावा किसी और ज़बान में हो उसमें सबसे अहम और एहतियात की चीज़ क़ुरआन का तर्जुमा है, क्योंकि वह अल्लाह के कलाम की तर्जुमानी व बयान है, उसमें मामूली सी कमी-बेशी भी अपनी तरफ़ से जायज़ नहीं, इसलिये मैंने खुद कोई तर्जुमा लिखने की हिम्मत नहीं की और इसकी ज़रूरत भी नहीं थी क्योंकि अकाबिर उलेमा यह काम बड़ी एहतियात के साथ अन्जाम दे चुके हैं। उर्दू ज़बान में इस ख़िदमत को सबसे पहले हज़रत शाह वलीयुल्लाह देहलवी रह. के दो क़ाबिल बेटों हज़रत शाह रफ़ीउद्दीन और हज़रत शाह अब्दुल-क़ादिर रह. ने अपने-अपने अन्दाज़ में अन्जाम दिया। पहले ज़िक्र हुए तर्जुमे में बिल्कुल तहतुल्लफ़्ज़ तर्जुमे को इख़्तियार किया गया (यानी इबारत और मुहावरे को ध्यान में न रखते हुए सिर्फ़ यह ध्यान रखा कि क़ुरआन में अलफ़ाज़ जिस तरतीब से हैं उसी तरतीब से तर्जुमा लिख दिया जाये) उर्दू मुहावरे की भी ज़्यादा रियायत नहीं रखी गई और बड़े कमाल के साथ क़ुरआन के अलफ़ाज़ को उर्दू में मुन्तक़िल फ़रमाया है, और दूसरे तर्जुमे में तहतुल्लफ़्ज़ के साथ उर्दू मुहावरे की रियायत भी है जिसको हज़रत शाह अब्दुल-क़ादिर रह. ने चालीस साल मस्जिद में मोतकिफ़ (एतिकाफ़ की हालत में) रहकर पूरा किया है, यहाँ तक कि आपका जनाज़ा मस्जिद ही से निकला है। दारुल-उलूम देवबन्द के पहले सदर-मुदर्रिस हज़रत मौलाना मुहम्मद याक़ूब साहिब रह. का फ़रमाना है कि बेशक यह तर्जुमा इल्हामी (अल्लाह की तरफ़ से दिल में डाला हुआ) है, इनसान के बस की बात नहीं कि ऐसा तर्जुमा कर सके। शैख़ुल-अरब वल-अजम सैयदी हज़रत मौलाना महमूदुल् हसन साहिब रह. ने अपने वक़्त में जब यह देखा कि अब बहुत से मुहावरे बदल जाने की वजह से कुछ जगहों में तरमीम (संशोधन) की ज़रूरत है तो उन्होंने इसी तर्जुमे की यह ख़िदमत अन्जाम दी जो तर्जुमा शैख़ुल-हिन्द के नाम से मशहूर हुआ। अहक़र ने क़ुरआने करीम की इबारत के लिये इसी तर्जुमे को जूँ-का-तूँ लिया है।

2. सैयदी हज़रत हकीमुल-उम्मत मौलाना अशरफ़ अली थानवी क़ुद्दि-स सिर्रुहू ने असल तफ़सीर बयानुल-क़ुरआन को इस अन्दाज़ में लिखा है कि क़ुरआन के मतन (असल इबारत) के तर्जुमे के साथ-साथ ही उसकी तफ़सीर व वज़ाहत ब्रेकिटों के दरमियान फ़रमाई है। तर्जुमे को उसके ऊपर लाईन लगाकर और तफ़सीर को ब्रेकिट के अन्दर लिखकर अलग और नुमायाँ कर दिया है। इस तरह लाईन खिंचे हुए अलफ़ाज़ में क़ुरआन का तर्जुमा है और ब्रेकिटों के बीच उसकी तफ़सीर है। (यह उर्दू तर्जुमे की बात है) बहुत से लोगों ने इसी लाईन लगे हुए तर्जुमे को अलग करके क़ुरआन मजीद के मतन के नीचे तर्जुमा

हकीमुल-उम्मत के नाम से खुद हज़रत रह. के ज़माने में प्रकाशित भी कर दिया था।

मुझे चूँकि **बयानुल-क़ुरआन** की तस्हील (आसान करने) का काम पहले से पेशे-नज़र था, इस वक़्त अहक़र ने हज़रत रह. की उस तफ़सीर को "ख़ुलासा-ए-तफ़सीर" के नाम से शुरू में उसी हालत में सिर्फ़ एक तसर्रुफ़ (तरमीम) के साथ नक़ल कर दिया है, वह यह कि उस तफ़सीर में जिस जगह ख़ास इस्तिलाही और मुश्किल अलफ़ाज़ आये थे वहाँ उनको आसान लफ़्ज़ों में मुन्तक़िल कर दिया और उसका नाम **ख़ुलासा-ए-तफ़सीर** रखना इसलिये मुनासिब हुआ कि ख़ुद हज़रत रह. ने बयानुल-क़ुरआन के ख़ुतबे (प्रस्तावना) में इसके मुताल्लिक़ फ़रमाया है कि इसको मुख़्तसर तफ़सीर या तफ़सीली तर्जुमा कहा जा सकता है।

और अगर कोई मज़मून ही ख़ालिस इल्मी और मुश्किल था तो उसको यहाँ से अलग करके **मआरिफ़ व मसाईल** में अपनी आसान इबारत में लिख दिया ताकि मशग़ूल आदमी अगर ज़्यादा न देख सके तो इस ख़ुलासा-ए-तफ़सीर से ही कम से कम क़ुरआनी मफ़्हूम (मतलब) को पूरा समझ ले। इन दोनों चीज़ों की पाबन्दी पहली जिल्द के पहले प्रकाशन में पारा अलिफ़-लाम-मीम के पहले पाव आयत नम्बर 44 तक नहीं हो सकी थी अब दूसरे संस्करण में उस हिस्से को भी मुकम्मल करके पूरी तफ़सीर के मुताबिक़ कर दिया गया है। अलबत्ता एक एहतिमाम जो दूसरी जिल्द से शुरू हुआ कि क़ुरआन के मतन के नीचे तर्जुमा शैख़ुल-हिन्द लिखा जाये यह पहली बार की छपाई की पूरी जिल्द अव्वल में नहीं था, दूसरी बार में छपने के वक़्त इसको भी मतन के नीचे लिखकर सब के मुताबिक़ कर दिया गया, यह दोनों काम तो अकाबिर उलेमा के थे।

3. तीसरा काम जो अहक़र की तरफ़ मन्सूब है वह **"मआरिफ़ व मसाईल"** का उनवान है। इसमें भी ग़ौर किया जाये तो अहक़र की सिर्फ़ उर्दू इबारत ही है, मज़ामीन सब पहले उलेमा की तफ़सीर से लिये हुए हैं जिनके हवाले हर जगह लिख दिये हैं। इसमें अहक़र ने चन्द चीज़ों का ध्यान रखा और पाबन्दी की है:

(1) उलेमा के लिये क़ुरआन की तफ़सीर में सबसे पहला और अहम काम लुग़त की तहक़ीक़, नह्वी तरकीब, फ़न्ने बलाग़त के नुक्तों और क़िराअत की भिन्नता की बहसें हैं जो बिला शुब्हा उलेमा के लिये क़ुरआन समझने में बुनियादी पत्थर की हैसियत रखते हैं। इसी के ज़रिये क़ुरआने करीम के सही मफ़्हूम (मतलब व मआनी) को पाया जा सकता है, लेकिन अवाम तो अवाम हैं आजकल के बहुत से अहले इल्म भी इन तफ़सीलात में उलझन महसूस करते हैं, ख़ास तौर से अवाम के लिये तो ये बहसें उनकी समझ से ऊपर और असल मक़सद में ख़लल डालने वाली बनती हैं, वे समझने लगते हैं कि क़ुरआन को समझकर पढ़ना मुश्किल काम है, हालाँकि क़ुरआने करीम का जो असल मक़सद है कि इनसान का ताल्लुक़ अपने रब के साथ मज़बूत हो और उसके नतीजे में माद्दी ताल्लुक़ात सन्तुलन पर आ जायें कि वे दीन की राह में रुकावट न बनें, दुनिया से ज़्यादा आख़िरत की

फ़िक्र पैदा हो और इनसान अपने हर कौल व फ़ेल पर यह सोचने का आदी हो जाये कि इसमें कोई चीज़ अल्लाह और उसके रसूल की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ तो नहीं, इस चीज़ को क़ुरआने करीम ने इतना आसान कर दिया है कि मामूली लिखा पढ़ा आदमी खुद देखकर और बिल्कुल अनपढ़ जाहिल सुनकर भी फ़ायदा हासिल कर सकता है। क़ुरआने करीम ने खुद इसका ऐलान फ़रमा दिया है:

وَلَقَدْ يَسَّرْنَا الْقُرْاٰنَ لِلذِّكْرِ فَهَلْ مِنْ مُّدَّكِرٍ. (١٧:٥٤)

तफ़सीर "मआरिफ़ुल-क़ुरआन" में अवाम की सहूलत को सामने रखते हुए इन इल्मी और इस्तिलाही बहसों की तफ़सील नहीं लिखी गई बल्कि तफ़सीर के इमामों के अक़वाल में जिसको जमहूर ने राजेह (वरीयता प्राप्त) क़रार दिया है उसके मुताबिक़ तफ़सीर ले ली गई और कहीं-कहीं ज़रूरत के हिसाब से यह बहस ले ली भी गई है तो वहाँ भी इसका लिहाज़ रखा गया है कि ख़ालिस इल्मी इस्तिलाहात, अपरिचित और मुश्किल अलफ़ाज़ न आयें और इसी लिये ऐसे इल्मी मबाहिस को भी छोड़ दिया गया है जो अवाम के लिये ग़ैर-ज़रूरी और उनके स्तर से ऊँचे हैं।

(2) मुस्तनद व मोतबर (विश्वसनीय) तफ़सीरों से ऐसे मज़ामीन को अहमियत के साथ नक़ल किया गया है जो इनसान के दिल में क़ुरआने करीम की अज़मत (बड़ाई) और अल्लाह तआला और उसके रसूल सल्ल. की अज़मत व मुहब्बत को बढ़ायें और क़ुरआन पर अमल और अपने आमाल के सुधार की तरफ़ माईल करें।

(3) इस पर तो हर मोमिन का ईमान है कि क़ुरआने करीम क़ियामत तक आने वाली नस्लों की हिदायत के लिये नाज़िल हुआ है और क़ियामत तक पैदा होने वाले तमाम मसाईल (समस्याओं) का हल इसमें मौजूद है, बशर्तेकि क़ुरआन को रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के बयान व खुलासे की रोशनी में देखा और पढ़ा जाये, और इसमें पूरे ग़ौर व फ़िक्र से काम लिया जाये। इसी लिये हर ज़माने के तफ़सीर के उलेमा ने अपनी अपनी तफ़सीरों में उन नये मसाईल और मबाहिस पर ज़्यादा ज़ोर दिया है जो उनके ज़माने में पैदा हुए या बेदीन अहले बातिल की तरफ़ से शुकूक व शुब्हात की सूरत में पैदा कर दिये गये, इसी लिये बीच की सदियों की तफ़सीरें मोतज़िला, जहमिया, सफ़वानिया वग़ैरह फ़िर्क़ों की तरदीद और उनके शुब्हात को दूर करने से पुर (भरी हुई) नज़र आती हैं।

अहक़र नाकारा ने भी इसी उसूल के तहत ऐसे ही मसाईल और बहसों को अहमियत दी है जो या तो इस ज़माने के मशीनी दौर ने नये-नये पैदा कर दिये और या इस ज़माने के बेदीन, यहूदी और ईसाई उन उलेमा ने मुसलमानों के दिलों में शुकूक व शुब्हात पैदा करने के लिये खड़े कर दिये जो इस्लामियात का अध्ययन इसी उद्देश्य से करते हैं। नये मसाईल (समस्याओं) के हल के लिये जहाँ तक हो सका कोशिश की है कि क़ुरआन व सुन्नत या

फ़ुक़हा-ए-उम्मत के अक़वाल में उसका कोई सुबूत मिले या कम से कम उसकी कोई नज़ीर (मिसाल) मिले। और अल्हम्दु लिल्लाह इसमें कामयाबी हुई। ऐसे मसाईल में अपने ज़माने के दूसरे उलेमा से मश्विरा लेने का भी एहतिमाम किया गया है और मुल्हिदाना (दीन का इनकार करने वालों की तरफ़ से किये जाने वाले) शुकूक व शुब्हात को दूर करने में भी अपनी बिसात भर इसकी कोशिश रही है कि जवाब इत्मीनान-बख़्श हो। और इस जवाब देने के लिये इस्लामी मसाईल में मामूली सी तरमीम (तब्दीली और संशोधन) को गवारा नहीं किया, जैसे कि मौजूदा ज़माने के कुछ मुसन्निफ़ों (लेखकों) ने इस जवाब देने में ख़ुद इस्लामी मसाईल का मतलब बयान करने में तरमीम कर डालने का तरीक़ा इख़्तियार किया है, यह सब कुछ अपनी मालूमात और अपनी कोशिश की हद तक है जिसमें बहुत सी ख़ताओं और ग़लती व चूक की संभावना भी है। अल्लाह तआला माफ़ फ़रमायें और उनकी इस्लाह (सुधार और सही करने) का रास्ता निकाल दें।

ऊपर बयान हुई चीज़ों और जिन बातों का इसमें एहतिमाम किया गया है उसके सबब तफ़सीर **मआरिफ़ुल-क़ुरआन** निम्नलिखित चीज़ों की जामे बन गयी है:

1. क़ुरआने करीम के दो मुस्तनद (मोतबर व विश्वसनीय) तर्जुमे- एक हज़रत शैख़ुल् हिन्द रह. का जो दर असल शाह अब्दुल-क़ादिर साहिब रह. का तर्जुमा है, दूसरा हकीमुल् उम्मत हज़रत थानवी रह. का तर्जुमा।

2. ख़ुलासा-ए-तफ़सीर जो दर हक़ीक़त आसान ज़बान और अन्दाज़ में बयानुल-क़ुरआन का ख़ुलासा है, जिसको अलग से भी क़ुरआने करीम के हाशिये पर छाप लिया जाये तो थोड़ी फ़ुर्सत वालों के लिये क़ुरआन समझने का एक मोतबर और बेहतरीन ज़रिया है। उसने एक और ज़रूरत को पूरा कर दिया जिसकी तरफ़ मुझे मेरे दीनी भाई मौलाना बदरे आलम साहिब मुहाजिर मदीना मुनव्वरा ने अल्लामा फ़रीद वजदी रह. की एक मुख़्तसर तफ़सीर क़ुरआन के हाशिये पर दिखलाकर तवज्जोह दिलाई थी कि काश उर्दू में भी कोई ऐसी तफ़सीर होती जो इसकी तरह मुख़्तसर और आसान हो। अल्लाह तआला ने इससे यह आरज़ू भी पूरी फ़रमा दी। ये दोनों चीज़ें तो अकाबिर उलेमा की मुस्तनद और मारूफ़ हैं।

3. तीसरी चीज़ **मआरिफ़ व मसाईल** हैं जो मेरी तरफ़ मन्सूब हैं और मेरी मेहनत का मेहवर (धुरी) हैं, अल्हम्दु लिल्लाह उसमें भी मेरा अपना कुछ नहीं, सब उम्मत के उलेमा और बुज़ुर्गों ही से लिया हुआ है। आजकल के उलेमा और लिखने वाले अक्सर इस फ़िक्र में रहते हैं कि अपनी कोई तहक़ीक़ और अपनी तरफ़ से कोई नई चीज़ पेश करें, मैं इस पर अल्लाह तआला का शुक्र-गुज़ार हूँ कि इस सारे काम में मेरा अपना कुछ नहीं:

ईं हमा गुफ़्तेम व लेक अन्दर पेच बे इनायाते ख़ुदा हेचम व हेच

والله سبحانه و تعالیٰ اسأل الصواب والسداد فی المبدأ والمعاد وبه استعین من زلۃ القدم فیما علمت و ما لا اعلم وایاه اسأل ان یجعلہ خالصا لوجه الکریم وان یتقبله منی کما تقبل من صالحی عباده وان ینفعنی به یوم لا ینفع مال ولا بنون و الحمداولاً واخرًا وظاهرًا و باطنًا وصلی اللّٰه تعالیٰ علی خیر خلقه وصفوۃ رسله خاتم الانبیاء وعلی آله واصحابه اجمعین. وبارك وسلم تسلیمًا کثیرًا.

(ऊपर दिये गये फ़ारसी के शे'र और उसके बाद की अ़रबी इबारत में हज़रत मुफ़्ती साहिब रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने अपनी आ़जिज़ी और इस अहम काम के अन्जाम पाने में अल्लाह की तौफ़ीक़ के ही सब कुछ होने का ज़िक्र फ़रमाया है। अ़रबी इबारत में अपनी इस ख़िदमत के क़ुबूल होने और आख़िरत में इसके ज़ख़ीरा बन जाने की दुआ़ फ़रमाई है। वह जाने-अनजाने में होने वाली भूल-चूक से अल्लाह करीम से माफ़ी के तलबगार, इस ख़िदमत के अन्जाम पाने पर अल्लाह के तारीफ़ करने वाले और उसके शुक्रगुज़ार हैं। आख़िर में वह नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम, आपकी आले पाक और सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम पर बेहद दुरूद व सलाम भेजने के साथ अपनी तहरीर को ख़त्म करते हैं। **मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी**)

बन्दा-ए-ज़ईफ़ व नाकारा
मुहम्मद शफ़ी
ख़ादिम दारुल-उलूम कराची
25 शाबान सन् 1392 हिजरी

एक अहम बात

क़ुरआन मजीद के मतन को अरबी के अलावा हिन्दी या किसी दूसरी भाषा के रस्मुलख़त (लिपि) में रुपान्तर करने पर अक्सर उलेमा की राय इसके विरोध में है। कुछ उलेमा का ख़्याल है कि इस तरह करने से क़ुरआन मजीद के हर्फ़ों की अदायगी में तहरीफ़ (कमी-बेशी और रद्दोबदल) हो जाती है और उनको भय (डर) है कि जिस तरह इन्जील और तौरात तहरीफ़ का शिकार हो गई वैसे ही ख़ुदा न करे इसका भी वही हाल हो। यह तो ख़ैर नामुम्किन है, इसकी हिफ़ाज़त का वायदा अल्लाह तआला ने ख़ुद किया है और करोड़ों हाफ़िज़ों को क़ुरआन मजीद ज़बानी याद है।

इस सिलसिले में नाचीज़ **मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी** (इस तफ़सीर का हिन्दी अनुवादक) अर्ज़ करता है कि हक़ीक़त यह है कि अरबी रस्मुलख़त के अलावा दूसरी किसी भी भाषा में क़ुरआन मजीद को क़तई तौर पर सौ फ़ीसद सही नहीं पढ़ा जा सकता। इसलिए कि हर्फ़ों की बनावट के एतिबार से भी किसी दूसरी भाषा में यह गुंजाईश नहीं कि वह अरबी ज़बान के तमाम हुरूफ़ का मुतवादिल (विकल्प) पेश कर सके। फिर अगर किसी तरह कोई निशानी मुक़र्रर करके इस कमी को पूरा करने की कोशिश भी की जाए तो **'मख़ारिजे हुरूफ़'** यानी हुरूफ़ के निकालने का जो तरीक़ा, मक़ाम और इल्म है वह उस वैकल्पिक तरीक़े से हासिल नहीं किया जा सकता। जबकि यह सब को मालूम है कि सिर्फ़ अलफ़ाज़ के निकालने में फ़र्क़ होने से अरबी ज़बान में मायने बदल जाते हैं। इसलिये अरबी मतन की जो हिन्दी दी गयी है उसको सिर्फ़ यह समझें कि वह आपके अन्दर अरबी क़ुरआन पढ़ने का शौक़ पैदा करने के लिये है। तिलावत के लिये अरबी ही पढ़िये और उसी को सीखिये। वरना हो सकता है कि किसी जगह ग़लत उच्चारण के सबब पढ़ने में सवाब के बजाय अज़ाब के हक़दार न बन जायें।

मैंने अपनी पूरी कोशिश की है कि जितना मुझसे हो सके इस तफ़सीर को आसान बनाऊँ मगर फिर भी बहुत से मक़ामात पर ऐसे इल्मी मज़ामीन आये हैं कि उनको पूरी तरह आसान नहीं किया जा सका, मगर ऐसी जगहें बहुत कम हैं, उनके सबब इस अहम और क़ीमती सरमाये से मुँह नहीं मोड़ा जा सकता। अगर कोई मक़ाम समझ में न आये तो उस पर निशान लगाकर बाद में किसी आलिम से मालूम कर लें। तफ़सीर पढ़ने के लिये यकसूई और इत्मीनान का एक वक़्त मुक़र्रर करना चाहिये, चाहे वह थोड़ा सा ही हो। अगर इस लगन के साथ इसका मुतालआ जारी रखा जायेगा तो उम्मीद है कि आप इस क़ीमती

ख़ज़ाने से इल्म व मालूमात का एक बड़ा हिस्सा हासिल कर सकेंगे। यह बात एक बार फिर अर्ज़ किये देता हूँ कि असल मतन को अरबी ही में पढ़िये तभी आप उसका किसी क़द्र हक़ अदा कर सकेंगे। यह ख़ालिक़े कायनात का कलाम है अगर इसको सीखने में थोड़ा वक़्त और पैसा भी ख़र्च हो जाये तो इस सौदे को सस्ता और लाभदायक समझिये। कल जब आख़िरत का आलम सामने होगा और क़ुरआन पाक पढ़ने वालों को इनामात व सम्मान से नवाज़ा जायेगा तो मालूम होगा कि अगर पूरी दुनिया की दौलत और तमाम उम्र ख़र्च करके भी इसको हासिल कर लिया जाता तो भी इसकी क़ीमत अदा न हो पाती।

हमने रुकूअ, पाव, आधा, तीन पाव और सज्दे के निशानात मुक़र्रर किये हैं इनको ध्यान से देख लीजिये।

रुकूअ	❁	पाव	❖
आधा	●	तीन पाव	▲
सज्दा	✪		

OOOOOOOOOOOOOOOOOOOOOOOOOOOOOO

* सूरः फ़ातिहा *

यह सूरत मक्की है। इसमें सात आयतें और एक रुकूअ़ है।

और नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि सूरः फ़ातिहा हर बीमारी की शिफ़ा है। (बैहक़ी फ़ी शुअ़बिल-ईमान, सही सनद से, मज़हरी)

सूरः फ़ातिहा का एक नाम हदीस में सूरः शिफ़ा भी आया है। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी) और सही बुख़ारी में हज़रत अनस रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत नक़्ल की गयी है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया- क़ुरआने करीम की सब सूरतों में अज़ीम तरीन अल्हम्दु लिल्लाहि रब्बिल-आलमीन है। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ○

शुरू करता हूँ अल्लाह के नाम से जो बड़े मेहरबान निहायत रहम वाले हैं।

बिस्मिल्लाह क़ुरआन की एक आयत है

इस पर तमाम मुसलमानों का इत्तिफ़ाक़ है कि बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम क़ुरआन में सूरः नम्ल का पार्ट और हिस्सा है, और इस पर भी इत्तिफ़ाक़ है कि सिवाय सूरः तौबा के हर सूरत के शुरू में बिस्मिल्लाह लिखी जाती है। इसमें मुज्तहिद इमामों का इख़्तिलाफ़ है कि बिस्मिल्लाह सूरः फ़ातिहा का या तमाम सूरतों का हिस्सा है या नहीं? इमामे आज़म अबू हनीफ़ा रह. का मस्लक यह है कि बिस्मिल्लाह सिवाय सूरः नम्ल के और किसी सूरत का हिस्सा नहीं, बल्कि एक मुस्तक़िल आयत है जो हर सूरत के शुरू में दो सूरतों के बीच फ़ासले और फ़र्क़ को ज़ाहिर करने के लिये नाज़िल हुई है।

क़ुरआन की तिलावत और हर अहम काम को बिस्मिल्लाह से शुरू करने का हुक्म

जाहिलीयत वालों (इस्लाम से पहले के लोगों) की आदत थी कि अपने कामों को बुतों के नाम से शुरू किया करते थे, इस रस्मे जाहिलीयत को मिटाने के लिये क़ुरआने करीम की सबसे पहली आयत जो हज़रत जिब्रीले अमीन लेकर आये हैं उसमें क़ुरआन को अल्लाह के नाम से शुरू करने का हुक्म दिया गया। यानीः

اِقْرَاْ بِاسْمِ رَبِّكَ

(पढ़ अपने रब के नाम से)

अल्लामा सुयूती रह. ने फ़रमाया कि क़ुरआन के सिवा दूसरी तमाम आसमानी किताबें भी बिस्मिल्लाह से शुरू की गई हैं और बाज़ उलेमा ने फ़रमाया है कि 'बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम' क़ुरआन और उम्मते मुहम्मदिया की ख़ुसूसियात में से है। दोनों क़ौल में जोड़ यह है कि अल्लाह के नाम से शुरू करना तो तमाम आसमानी किताबों में मुश्तरक है मगर 'बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम' के अलफ़ाज़ क़ुरआन की ख़ुसूसियत है जैसे कि कुछ रिवायतों में है कि नबी करीम सल्ल. भी शुरू में हर काम को अल्लाह के नाम से शुरू करने के लिये 'बिस्मिकल्लाहुम्म' कहते और लिखते थे। जब आयत 'बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम' नाज़िल हुई तो इन्हीं अलफ़ाज़ को इख़्तियार फ़रमा लिया और हमेशा के

लिये यह सुन्नत जारी हो गई। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी व रूहुल-मआनी)

क़ुरआने करीम में जगह-जगह इसकी हिदायत है कि हर काम को अल्लाह के नाम से शुरू किया जावे और रसूले करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि हर मुहिम (अहम और महत्त्वपूर्ण) काम जो बिस्मिल्लाह से शुरू न किया जावे वह बेबरकत रहता है।

एक हदीस में इरशाद फ़रमाया कि घर का दरवाज़ा बन्द करो तो बिस्मिल्लाह कहो, चिराग़ बुझाओ तो बिस्मिल्लाह कहो, बर्तन ढको तो बिस्मिल्लाह कहो, खाना खाने, पानी पीने, वुज़ू करने, सवारी पर सवार होने और उतरने के वक़्त बिस्मिल्लाह पढ़ने की हिदायतें क़ुरआन व हदीस में बार-बार आई हैं। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

हर काम को बिस्मिल्लाह से शुरू करने की हिक्मत

इस्लाम ने हर काम को अल्लाह के नाम से शुरू करने की हिदायत देकर इनसान की पूरी ज़िन्दगी का रुख़ अल्लाह तआला की तरफ़ इस तरह फेर दिया है कि वह क़दम-क़दम पर वफ़ादारी के इस हलफ़ को ताज़ा करता रहे कि मेरा वजूद और मेरा कोई काम बग़ैर अल्लाह तआला की मशीयत व इरादे और उसकी इमदाद के नहीं हो सकता, जिसने उसकी हर नक़ल व हरकत (गतिविधि) और तमाम आर्थिक और दुनियावी कामों को भी एक इबादत बना दिया।

अमल कितना मुख़्तसर (छोटा) है कि न इसमें कोई ख़र्च होता है न मेहनत, और फ़ायदा कितना क़ीमती और बड़ा है कि दुनिया भी दीन बन गई। एक काफ़िर भी खाता पीता है और एक मुसलमान भी, मगर मुसलमान अपने लुक़्मे से पहले बिस्मिल्लाह कहकर यह इक़रार करता है कि यह लुक़्मा ज़मीन से पैदा होने से लेकर पक कर तैयार होने तक आसमान व ज़मीन और सितारों और हवा व फ़िज़ाई मख़्लूक़ात की ताक़तें, फिर लाखों इनसानों की मेहनत ख़र्च होकर तैयार हुआ है, इसका हासिल करना मेरे बस में नहीं था, अल्लाह ही की ज़ात है जिसने इन तमाम मराहिल से गुज़ारकर यह लुक़्मा या घूँट मुझे अता फ़रमाया है। मोमिन काफ़िर दोनों सोते जागते भी हैं, चलते फिरते भी हैं, मगर हर मोमिन सोने से पहले और जागने के वक़्त अल्लाह का नाम लेकर अल्लाह के साथ उसी तरह अपने राब्ते (ताल्लुक़ और संपर्क) को दोहराता है जिससे यह तमाम दुनियावी और आर्थिक ज़रूरतें ज़िक्रे ख़ुदा बनकर इबादत में लिखी जाती हैं।

मोमिन सवारी पर सवार होते हुए बिस्मिल्लाह कहकर गोया यह गवाही देता है कि इस सवारी का पैदा करना या मुहैया करना, फिर इसको मेरे क़ब्ज़े में दे देना इनसान की क़ुदरत से बाहर की चीज़ हैं, रब्बुल-इज़्ज़त ही के बनाये हुए मज़बूत निज़ाम का काम है कि कहीं की लकड़ी, कहीं का लोहा, कहीं की विभिन्न धातें, कहीं के कारीगर, कहीं के चलाने वाले सब के सब मेरी ख़िदमत में लगे हुए हैं, चन्द पैसे ख़र्च करने से अल्लाह की मख़्लूक़ की इतनी बड़ी मेहनत को हम अपने काम में ला सकते हैं और वे पैसे भी हम अपने साथ कहीं से नहीं लाये थे बल्कि उनके हासिल करने के तमाम असबाब भी उसी के पैदा किये हुए हैं। ग़ौर कीजिये कि इस्लाम की सिर्फ़ इसी एक मुख़्तसर सी तालीम ने इनसान को कहाँ से कहाँ पहुँचा दिया। इसलिये यह कहना सही है कि बिस्मिल्लाह एक अक्सीर नुस्ख़ा

[illegible] जाफ़ का सीना बनता है। पस तमाम तारीफ़ें उस अल्लाह के लिये हैं जिसने हमें इस्लाम और उसकी तालीमात से नवाज़ा।

मसला

क़ुरआन की तिलावत शुरू करने के वक़्त पहले 'अऊज़ु बिल्लाहि मिनश्शैतानिर्रजीम' और फिर 'बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम' पढ़ना सुन्नत है, और तिलावत के बीच में भी सूरः बराअत (सूरः तौबा) के अलावा हर सूरत के शुरू में बिस्मिल्लाह पढ़ना सुन्नत है।

इस तमहीद के बाद आयत "बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम" की तफ़सीर देखिये।

'बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम' की तफ़सीर

'बिस्मिल्लाह' यह कलिमा तीन लफ़्ज़ों से मिलकर बना है- एक हर्फ़ 'बा' दूसरे 'इस्म' तीसरे 'अल्लाह'। हर्फ़ 'बा' अरबी ज़बान में बहुत से मायने के लिये इस्तेमाल होता है, जिनमें से तीन मायने इस जगह के मुनासिब हैं, उनमें से हर एक मायने इस जगह लिये जा सकते हैं:

1. मुसाहबत, यानी किसी चीज़ का किसी चीज़ से मिला हुआ होना।
2. इस्तिआनत, यानी किसी चीज़ से मदद हासिल करना।
3. तबर्रुक, यानी किसी चीज़ से बरकत हासिल करना।

लफ़्ज़ 'इस्म' में लुग़वी और इल्मी तफ़सीलात बहुत हैं जिनका जानना अवाम के लिये ज़रूरी नहीं, इतना समझ लेना काफ़ी है कि उर्दू में इसका तर्जुमा 'नाम' से किया जाता है।

लफ़्ज़ 'अल्लाह' अल्लाह तआला के नामों में सबसे बड़ा और सबसे ज़्यादा जामे नाम है, और बाज़ उलेमा ने इसी को 'इस्मे आज़म' कहा है। और यह नाम अल्लाह के सिवा किसी दूसरे का नहीं हो सकता, इसलिये इस लफ़्ज़ का तसनिया और जमा नहीं आते, क्योंकि अल्लाह वाहिद (एक और अकेला) है उसका कोई शरीक नहीं। खुलासा यह है कि अल्लाह नाम है उस मौजूद हक़ का जो कमाल वाली तमाम सिफ़ात का जामे और रब होने की तमाम सिफ़ात का मालिक, यक्ता और बेमिसाल है। इसलिये कलिमा 'बिस्मिल्लाह' के मायने हर्फ़ 'बा' के वक़्त तीन मायनों की तरतीब से यह हुए:-

'अल्लाह के नाम के साथ', 'अल्लाह के नाम की मदद से', 'अल्लाह के नाम की बरकत से'।

लेकिन तीनों सूरतों में यह ज़ाहिर है कि यह कलाम नामुकम्मल है, जब तक उस काम का ज़िक्र न किया जाये जो अल्लाह के नाम के साथ या उसके नाम की बरकत से करना मक़सूद है। इसलिये नहवी क़ायदे के मुताबिक़ यहाँ मक़ाम के मुनासिब कोई फ़ेल (काम) छुपा हुआ होता है जैसे 'शुरू करता हूँ' या 'पढ़ता हूँ' अल्लाह के नाम के साथ। और मुनासिब यह है कि यह फ़ेल (काम) भी बाद में छुपा हुआ माना जाये ताकि हक़ीक़त में शुरू अल्लाह ही के नाम से हो। वह फ़ेल भी अल्लाह के नाम से पहले न आये, सिर्फ़ हर्फ़ 'बा' इस्मुल्लाह (अल्लाह के नाम) से पहले आना अरबी ज़बान के लिहाज़ से ज़रूरी व मजबूरी है। इसमें भी 'मुस्हफ़े उस्मानी' (हज़रत उस्मान के ज़रिये प्रसारित क़ुरआनी प्रति) में तमाम सहाबा की सहमति से यह रियायत रखी गई है कि हर्फ़ 'बा' लिपि के

क़ायदे से अलिफ़ के साथ मिलाकर लिखना चाहिये था और लफ़्ज़ 'इस्म' अलग जिसकी सूरत होती بِسْمِ اللّٰهِ लेकिन मुस्हफ़े उस्मानी के रसुल-ख़त (लिपि) में हर्फ़ 'हमज़ा' को गिराकर हर्फ़ 'बा' को 'सीन' के साथ मिलाकर देखने में 'इस्म' का एक हिस्सा और अंग बना दिया ताकि शुरू 'इस्मुल्लाह' से हो जाये यही वजह है कि दूसरे मौक़ों पर यह हर्फ़ ख़त्म नहीं किया जाता जैसे:

اِقْرَاْ بِاسْمِ رَبِّكَ

में 'बा' को 'अलिफ़' के साथ लिखा जाता है। यह सिर्फ़ बिस्मिल्लाह की ख़ुसूसियत है कि हर्फ़ 'बा' को 'सीन' के साथ मिला दिया गया है।

اَلرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ O

'अर्रहमान अर्रहीम' ये दोनों अल्लाह तआला की सिफ़ात हैं। 'रहमान' के मायने आम रहमत के और 'रहीम' के मायने पूरी रहमत के हैं। आम रहमत से मतलब यह है कि वह ज़ात जिसकी रहमत सारे आलम और सारी कायनात और जो कुछ अब तक पैदा हुआ है और जो कुछ होगा सब पर छायी हुई और शामिल हो, और पूरी रहमत का मतलब यह है कि उसकी रहमत कामिल व मुकम्मल हो।

यही वजह है कि लफ़्ज़ 'रहमान' अल्लाह जल्ल शानुहू की ज़ात के साथ मख़्सूस है, किसी मख़्लूक़ को रहमान कहना जायज़ नहीं। क्योंकि अल्लाह तआला के सिवा कोई भी ऐसा नहीं हो सकता जिसकी रहमत से आलम की कोई चीज़ ख़ाली न रहे। इसी लिये जिस तरह लफ़्ज़ "अल्लाह" का जमा (बहुवचन) और तसनिया (दो के लिये लफ़्ज़) नहीं आता, रहमान का भी जमा व तसनिया नहीं आता, क्योंकि वह एक ही ज़ाते पाक के साथ मख़्सूस है, दूसरे और तीसरे का वहाँ एहतिमाल (संभावना और गुंजाईश) ही नहीं। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी) बख़िलाफ़ लफ़्ज़ रहीम के कि इसके मायने में कोई ऐसी चीज़ नहीं जिसका पाया जाना मख़्लूक़ में नामुम्किन हो, क्योंकि यह हो सकता है कि कोई शख़्स किसी शख़्स से पूरी-पूरी रहमत (हमदर्दी व मुहब्बत) का मामला करे। इसी लिये लफ़्ज़ 'रहीम' इनसान के लिये भी बोला जा सकता है। क़ुरआने करीम में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के लिये भी यह लफ़्ज़ इस्तेमाल फ़रमाया है। चुनाँचे इरशाद है: 'बिल्मुअ़मिनी-न रऊफ़ुर्रहीम'।

मसला

इससे यह भी मालूम हो गया कि आजकल अब्दुर्रहमान, फ़ज़्लुर्रहमान वग़ैरह नामों में कमी करके 'रहमान' कहते हैं और उस शख़्स को इस लफ़्ज़ से ख़िताब करते हैं, यह नाजायज़ और गुनाह है।

हिक्मत

'बिस्मिल्लाह' में अल्लाह तआला के अस्मा-ए-हुस्ना (पाक नामों) और सिफ़ाते कमाल में से सिर्फ़ दो सिफ़तें ज़िक्र की गई हैं, और वे दोनों लफ़्ज़ रहमत से निकले हुए हैं और रहमत के वसी (फैला हुआ) और कमाल (मुकम्मल होने) पर दलालत करने वाली हैं। इसमें इशारा इस बात की तरफ़ है कि आलम, आसमान व ज़मीन और तमाम कायनात के पैदा करने और इनको पालने वग़ैरह का मंशा अल्लाह तआला की सिफ़ते रहमत है, न उसको इन चीज़ों की ख़ुद कोई ज़रूरत थी न कोई दूसरा इन चीज़ों के पैदा करने पर मजबूर करने वाला था, सिर्फ़ उसी की रहमत के तक़ाज़े से ये सारी चीज़ें और इनकी परवरिश के सारे इन्तिज़ामात वजूद में आये हैं।

अहकाम व मसाईल

'तअ़व्वुज़' का मसला

'तअ़व्वुज़' के मायने हैं 'अऊज़ु बिल्लाहि मिनश्शैतानिर्रजीम' पढ़ना। क़ुरआने करीम में

اَتَ الْقُرْاٰنَ فَاسْتَعِذْ بِاللّٰهِ مِنَ الشَّيْطٰنِ الرَّجِيْمِ○

"यानी जब तुम क़ुरआन की तिलावत करो तो अल्लाह से पनाह माँगो शैतान मर (बुराई) से।"

क़ुरआन के पढ़ने से पहले 'तअ़व्वुज़' पढ़ना पूरी उम्मत की सहमति से सुन्नत है, चा नमाज़ के अन्दर हो या नमाज़ से बाहर। (शरह मुनिया) तअ़व्वुज़ पढ़ना तिलावते क़ुरआ मख़्सूस है, अ़लावा तिलावत के दूसरे कामों के शुरू में सिर्फ़ बिस्मिल्लाह पढ़ी जाये, तअ़व्वु बिल्लाह पढ़ना) मस्नून नहीं। (फ़तावा आ़लमगीरी)

जब क़ुरआने करीम की तिलावत की जाये उस वक़्त 'अऊज़ु बिल्लाह' और 'बिस्मि पढ़ी जायें। तिलावत के बीच में जब एक सूरत ख़त्म होकर दूसरी शुरू हो तो सूरः बराअत हर सूरत के शुरू में फिर बिस्मिल्लाह पढ़ी जाये, अऊज़ु बिल्लाह नहीं। और सूरः बर तिलावत के दरमियान में आ जाये तो उस पर बिस्मिल्लाह न पढ़े और अगर क़ुरआन व सूरः बराअत (सूरः तौबा) ही से शुरू कर रहा है तो उसके शुरू में अऊज़ु बिल्लाह और पढ़ना चाहिये। (फ़तावा आ़लमगीरी)

बिस्मिल्लाह के अहकाम

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम क़ुरआने मजीद में सूरः नम्ल में आयत का एक टुकड़ा है सूरतों के बीच मुस्तक़िल आयत है, इसलिये इसका अदब व एहतिराम क़ुरआने मजीद ह वाजिब है, इसको बेवुज़ू हाथ लगाना जायज़ नहीं। (इमाम करख़ी, शरह मुनिया) औ (नापाकी) या हैज़ व निफ़ास (माहवारी या प्रसव) की हालत में इसको बतौर तिलावत पढ़ होने से पहले जायज़ नहीं, हाँ किसी काम के शुरू में जैसे खाने पीने से पहले बतौर दुआ हाल में जायज़ है। (शरह मुनिया कबीर)

मसलाः पहली रक्अ़त के शुरू में अऊज़ु बिल्लाह के बाद बिस्मिल्लाह पढ़ना मस्नून है इसमें इख़्तिलाफ़ है कि आवाज़ से पढ़ा जाये या आहिस्ता। इमामे आज़म अबू हनीफ़ा रह. से दूसरे इमाम आहिस्ता पढ़ने को तरजीह देते हैं।

पहली रक्अ़त के बाद दूसरी रक्अ़तों के शुरू में भी बिस्मिल्लाह पढ़ना चाहिये इसके पर सब का इत्तिफ़ाक़ है, और बाज़ रिवायतों में हर रक्अ़त के शुरू में बिस्मिल्लाह पढ़ने कहा गया है। (शरह मुनिया)

मसलाः नमाज़ में सूरः फ़ातिहा के बाद सूरत शुरू करने से पहले बिस्मिल्लाह नहीं प चाहे जहरी (आवाज़ से क़िराअत करने वाली) नमाज़ हो या सिर्री (यानी बेआवाज़ के क़िर

नमाज़), नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम और खुलफ़ा-ए-राशिदीन रज़िवल्लाहु अन्हुम से साबित नहीं है। शरह मुनिया में इसी को इमामे आज़म और इमाम अबू यूसुफ़ रह. का कौल लिखा है और शरह मुनिया, दुर्रे मुख़्तार, बुरहान वग़ैरह में इसी को तरजीह दी है, मगर इमाम मुहम्मद रह. का कौल यह है कि सिर्री नमाज़ों में पढ़ना बेहतर है। बाज़ रिवायतों में यह कौल इमाम अबू हनीफ़ा रह. की तरफ़ भी मन्सूब किया गया है और अल्लामा शामी ने कुछ फ़ुक़हा से इसको तरजीह देना भी नक़ल किया है। बहिश्ती ज़ेवर में भी इसी को इख़्तियार किया गया है और इस पर सब का इत्तिफ़ाक़ है कि कोई पढ़ ले तो मक्रूह नहीं। (फ़तावा शामी)

सूरः फ़ातिहा

सूरः फ़ातिहः मक्का में नाज़िल हुई। इसमें 7 आयतें और 1 रुकूअ़ है।

ايها (1) سُوْرَةُ الْفَاتِحَةِ مَكِّيَّةٌ (٥) ذكرها

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ ۝ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ ۝ مٰلِكِ يَوْمِ الدِّيْنِ ۝
اِيَّاكَ نَعْبُدُ وَاِيَّاكَ نَسْتَعِيْنُ ۝ اِهْدِنَا الصِّرَاطَ الْمُسْتَقِيْمَ ۝ صِرَاطَ
الَّذِيْنَ اَنْعَمْتَ عَلَيْهِمْ ۙ غَيْرِ الْمَغْضُوْبِ عَلَيْهِمْ وَلَا الضَّآلِّيْنَ ۝

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम।

अल्हम्दु लिल्लाहि रब्बिल् आलमीन (1) अर्रहमानिर्रहीम (2) मालिकि यौमिद्दीन (3) इय्या-क नअ्बुदु व इय्या-क नस्तअ़ीन (4) इह्दिनस्-सिरातल्-मुस्तक़ीम (5) सिरातल्लज़ी-न अन्अ़म्-त अ़लैहिम (6) ग़ैरिल्-मग़ज़ूबि अ़लैहिम् व लज़्ज़ॉल्लीन। (7) ❁

शुरू अल्लाह के नाम से जो बेहद मेहरबान निहायत रहम वाला है।

सब तारीफ़ें अल्लाह के लिये हैं जो पालने वाला सारे जहान का (1) बेहद मेहरबान निहायत रहम वाला (2) मालिक रोज़े जज़ा का (3) तेरी ही हम बन्दगी करते हैं और तुझ ही से मदद चाहते हैं। (4) बतला हमको राह सीधी (5) राह उन लोगों की जिन पर तूने फ़ज़्ल फ़रमाया (6) जिन पर न तेरा ग़ुस्सा हुआ और न वे गुमराह हुए। (7) ❁

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

शुरू करता हूँ अल्लाह के नाम से जो बड़े मेहरबान, निहायत रहम वाले हैं।

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ○

सब तारीफ़ें अल्लाह तआला के लायक़ हैं जो पालने वाले हैं हर-हर आलम के (मख़्लूक़ात अलग-अलग जिन्स एक-एक आलम कहलाता है, जैसे फ़रिश्तों का आलम, इनसानों का आलम, जिन्नात का आलम)।

الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ○

जो बड़े मेहरबान, निहायत रहम वाले हैं।

مٰلِكِ يَوْمِ الدِّيْنِ○

जो मालिक हैं बदले के दिन के (मुराद क़ियामत का दिन है जिसमें हर शख़्स अपने अमल का बदला पायेगा)।

اِيَّاكَ نَعْبُدُ وَاِيَّاكَ نَسْتَعِيْنُ○

हम आप ही की इबादत करते हैं और आप ही से मदद की दरख़्वास्त करते हैं।

اِهْدِنَا الصِّرَاطَ الْمُسْتَقِيْمَ○

बतला दीजिए हमको रास्ता सीधा (मुराद दीन का रास्ता है)।

صِرَاطَ الَّذِيْنَ اَنْعَمْتَ عَلَيْهِمْ

रास्ता उन लोगों का जिन पर आपने इनाम फ़रमाया है (मुराद दीन का इनाम है)।

غَيْرِ الْمَغْضُوْبِ عَلَيْهِمْ وَلَا الضَّآلِّيْنَ○

न रास्ता उन लोगों का जिन पर आपका ग़ज़ब हुआ, और न उन लोगों का जो रास्ते से गुम हो गए। (हिदायत का रास्ता छोड़ने की दो वजह हुआ करती हैं- एक तो यह कि उसकी पूरी तहक़ीक़ ही न करे, 'ज़ॉल्लीन' से ऐसे लोग मुराद हैं। दूसरी वजह यह है कि तहक़ीक़ पूरी होने के बावजूद उस पर अमल न करे, 'मग़ज़ूबि अलैहिम' से ऐसे लोग मुराद हैं, क्योंकि जान-बूझकर ख़िलाफ़ करना ज़्यादा नाराज़ी का सबब होता है)।

मआरिफ़ व मसाईल

सूरः फ़ातिहा के मज़ामीन

सूरः फ़ातिहा सात आयतों पर मुश्तमिल है जिनमें से पहली तीन आयतों में अल्लाह तआला की हम्द व सना (तारीफ़ व प्रशंसा) है और आख़िरी तीन आयतों में इनसान की तरफ़ से दुआ व दरख़्वास्त का मज़मून है। जो रब्बुल-इज़्ज़त ने अपनी रहमत से ख़ुद ही इनसान को सिखाया है, और बीच की एक आयत में दोनों चीज़ें मुश्तरक (मिली-जुली) हैं, कुछ हम्द व सना (अल्लाह की तारीफ़)

का पहलू है कुछ दुआ व दरख़्वास्त का।

सही मुस्लिम शरीफ़ में हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अन्हु की रिवायत से मन्क़ूल है कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया- हक़ तआला ने फ़रमाया है कि नमाज़ (यानी सूरः फ़ातिहा) मेरे और मेरे बन्दे के बीच दो हिस्सों में तक़सीम की गई है, आधी मेरे लिये है और आधी मेरे बन्दे के लिये, और जो कुछ मेरा बन्दा माँगता है वह उसको दे दिया जायेगा। फिर रसूले करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि बन्दा जब कहता है- 'अल्हम्दु लिल्लाहि रब्बिल् आलमीन' तो अल्लाह तआला फ़रमाता है कि "मेरे बन्दे ने मेरी तारीफ़ की है" और जब वह कहता है- 'अर्रहमानिर्रहीम' तो अल्लाह तआला फ़रमाता है कि "मेरे बन्दे ने मेरी तारीफ़ व सना बयान की है" और जब बन्दा कहता है- 'मालिकि यौमिद्दीन' तो अल्लाह तआला फ़रमाता है कि "मेरे बन्दे ने मेरी बड़ाई बयान की है" और जब बन्दा कहता है- 'इय्या-क नअ़बुदु व इय्या-क नस्तअ़ीन' तो अल्लाह तआला फ़रमाता है कि "यह आयत मेरे और मेरे बन्दे के बीच मुश्तरक (संयुक्त) है" क्योंकि इसमें एक पहलू हक़ तआला की हम्द व सना (तारीफ़ व प्रशंसा) का है और दूसरा पहलू बन्दे की दुआ व दरख़्वास्त का है। इसके साथ यह भी इरशाद होता है कि "मेरे बन्दे को वह चीज़ मिलेगी जो उसने माँगी" फिर जब बन्दा कहता है- 'इह्दिनस्सिरातत् मुस्तक़ीम.....' (आख़िर तक) तो हक़ तआला फ़रमाता है कि "यह सब मेरे बन्दे के लिये है और इसको वह चीज़ मिलेगी जो इसने माँगी।"

(तफ़सीरे मज़हरी)

'अल्हम्दु लिल्लाहि' के मायने यह हैं कि सब तारीफ़ें अल्लाह ही के लिये हैं। यानी दुनिया में जहाँ कहीं किसी चीज़ की तारीफ़ की जाती है वह वास्तव में अल्लाह तआला ही की तारीफ़ है। क्योंकि इस दुनिया में जहाँ हज़ारों हसीन मनाज़िर और लाखों दिलकश नज़ारे और करोड़ों लाभदायक चीज़ें इनसान के दिल को हर वक़्त अपनी तरफ़ खींचती रहती हैं और अपनी तारीफ़ पर मजबूर करती हैं अगर ज़रा नज़र को गहरा कर लिया जाये तो उन सब चीज़ों के पर्दे में एक ही क़ुदरती हाथ काम करता हुआ नज़र आता है, और दुनिया में जहाँ कहीं किसी चीज़ की तारीफ़ की जाती है उसकी हक़ीक़त इससे ज़्यादा नहीं जैसे किसी नक़्श व निगार (फूल-बूटे और कलाकारी) या तस्वीर की या किसी कारीगरी की तारीफ़ की जाये कि ये सब तारीफ़ें दर हक़ीक़त नक़्क़ाश (कलाकार) और चित्रकार की या कारीगर की होती हैं। इस जुमले ने अनेकताओं के भंवर में फंसे हुए इनसान के सामने एक हक़ीक़त का दरवाज़ा खोलकर यह दिखला दिया है कि ये सारी कसरतें (अनेकतायें) एक ही वह्दत (एकता) से जुड़ी हुई हैं और सारी तारीफ़ें दर हक़ीक़त उसी एक क़ादिरे मुतलक़ की हैं उनको किसी दूसरे की तारीफ़ समझना नज़र व समझ की कोताही है:

हम्द रा बा तू निस्बते अस्त दुरुस्त ☆ बर दरे हर के रफ़्त बर दरे तुस्त

यानी तारीफ़ के लायक़ तो बस तेरी ही ज़ात है, जिस दरवाज़े पर भी चले जाओ पहुँचकर मालूम होता है कि दर असल वह तेरा ही दरवाज़ा है। (मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज़ानवी)

और यह ज़ाहिर है कि जब सारी कायनात में तारीफ़ के लायक़ दर हक़ीक़त एक ही ज़ात है तो इबादत की मुस्तहिक़ (पात्र) भी वही ज़ात हो सकती है। इससे मालूम हुआ कि 'अल्हम्दु लिल्लाह'

अगरचे हम्द व सना (तारीफ़ व प्रशंसा) के लिये लाया गया है लेकिन इसके ज़रिये एक लाजिक अन्दाज़ में मख़्लूक़ परस्ती की बुनियाद ख़त्म कर दी गई और बहुत उम्दा तरीक़े पर तौहीद (एक ख़ुदा को मानने) की तालीम दी गई है।

ग़ौर कीजिये कि क़ुरआन के इस मुख़्तसर से शुरूआती जुमले में एक तरफ़ तो हक़ तआला की हम्द व सना (तारीफ़) का बयान हुआ, इसी के साथ मख़्लूक़ात की रंगीनियों में उलझे हुए दिल व दिमाग़ को एक हक़ीक़त की तरफ़ मुतवज्जह करके मख़्लूक़ परस्ती की जड़ काट दी गई और एक बेतोड़ अन्दाज़ से ईमान के सबसे पहले रुक्न अल्लाह की तौहीद का नक़्श इस तरह जमा दिया गया कि जो दावा है उसी में ग़ौर करो तो वही अपनी दलील भी है। वाक़ई बड़ी बरकत वाली है अल्लाह की पाक ज़ात जो सबसे बेहतर बनाने और पैदा करने वाला है।

'रब्बिल-आलमीन' की तफ़सीर

इस मुख़्तसर शुरूआती जुमले के बाद अल्लाह तआला की पहली सिफ़त 'रब्बिल-आलमीन' ज़िक्र की गई है। मुख़्तसर अलफ़ाज़ में इसका भी खुलासा देखिये:

लफ़्ज़ 'रब' के मायने अरबी लुग़त के एतिबार से तरबियत व परवरिश करने वाले के हैं, और तरबियत इसको कहते हैं कि किसी चीज़ को उसकी तमाम मस्लेहतों की रियायत करते हुए दर्जा-ब-दर्जा आगे बढ़ाया जाये, यहाँ तक कि वह अपने कमाल की हद को पहुँच जाये।

यह लफ़्ज़ (यानी रब) सिर्फ़ अल्लाह तआला की पाक ज़ात के लिये मख़्सूस है, किसी मख़्लूक़ को बिना इज़ाफ़त के (किसी दूसरे लफ़्ज़ के साथ जोड़े) रब कहना जायज़ नहीं। क्योंकि हर मख़्लूक़ ख़ुद तरबियत की मोहताज है, वह किसी दूसरे की क्या तरबियत कर सकता है।

'अल्-आलमीन' आलम की जमा (बहुवचन) है जिसमें दुनिया की तमाम जिन्सें आसमान, चाँद, सूरज और तमाम सितारे और हवा व फ़िज़ा, बिजली व बारिश, फ़रिश्ते जिन्नात, ज़मीन और इसकी तमाम मख़्लूक़ात, हैवानात, इनसान, पेड़-पौधे, जमादात (बेजान चीज़ें) सब दाख़िल हैं। इसलिये "रब्बिल-आलमीन" के मायने यह हुए कि अल्लाह तआला पूरी कायनात की तमाम जिन्सों की तरबियत करने वाले हैं, और यह भी कोई बईद नहीं कि जैसे यह एक आलम (जहान) है जिसमें हम बसते हैं और इसके चाँद सूरज के निज़ाम और बारिश व बिजली और ज़मीन की लाखों मख़्लूक़ात को हम ख़ुद देखते हैं, यह सारा एक ही आलम हो और इसी जैसे और हज़ारों लाखों दूसरे आलम (जहान) हों जो इस आलम के बाहर की ख़ला (स्पेस) में मौजूद हों। इमाम राज़ी रह. ने अपनी तफ़सीरे कबीर में फ़रमाया है कि इस आलम से बाहर एक असीमित ख़ला का वजूद अक़्ली दलीलों से साबित है और यह भी साबित है कि अल्लाह तआला को हर चीज़ पर क़ुदरत है, उसके लिये क्या मुश्किल है कि उसने इस असीमित ख़ला में हमारे सामने मौजूद आलम की तरह के और भी हज़ारों लाखों आलम बना रखे हों।

हज़रत अबू सईद ख़ुदरी रज़ियल्लाहु अन्हु से मन्क़ूल है कि "आलम चालीस हज़ार हैं, यह दुनिया पूरब से पश्चिम तक एक आलम है, बाक़ी इसके अलावा हैं।" इसी तरह हज़रत मुक़ातिल रह. इमाम

तफ़सीर से मन्क़ूल है कि "आलम अरसी हज़ार हैं" (तफ़सीरे क़ुर्तुबी) इस पर जो यह शुब्हा किया जाता था कि ख़ला में इनसानी मिज़ाज के मुनासिब हवा नहीं होती इसलिये इनसान या कोई हैवान वहाँ ज़िन्दा नहीं रह सकता, इमाम राज़ी रह. ने इसका जवाब यह दिया है कि यह क्या ज़रूरी है कि इस आलम से बाहर ख़ला में जो दूसरे आलम के बाशिन्दे हों उनका मिज़ाज भी हमारे आलम के बाशिन्दों की तरह हो जो ख़ला में ज़िन्दा न रह सकें, यह क्यों नहीं हो सकता कि उन आलमों के बाशिन्दों (रहने वालों) के मिज़ाज व तबीयतें, उनकी ग़िज़ा व हवा यहाँ के बाशिन्दों से बिल्कुल अलग और भिन्न हो।

यह मज़मून तो अब से सात सौ सतत्तर साल पहले (आज 1433 हिजरी है तो इसमें 41 साल और जोड़ लीजिये) के इस्लामी फ़लॉस्फ़र इमाम राज़ी रह. का लिखा हुआ है जबकि फ़िज़ा व ख़ला की सैर और उसकी पैमाईश के यंत्र व उपकरण और माध्यम उस वक़्त ईजाद न हुए थे, आज रॉकेटों, टंकों और मिज़ाईलों के ज़माने में ख़ला के मुसाफ़िरों ने जो कुछ आकर बतलाया वह भी इससे ज़्यादा नहीं कि इस आलम (जहान) से बाहर की ख़ला की कोई हद और सीमा नहीं है और कुछ कहा नहीं जा सकता कि उस असीमित ख़ला में क्या कुछ मौजूद है। इस दुनिया से बहुत क़रीबी सितारों, चाँद और मिर्रीख़ की आबादी के बारे में जो अन्दाज़े आज के आधुनिक विज्ञान के विशेषज्ञ पेश कर रहे हैं वो भी यही हैं कि अगर उन सय्यारों के ऊपर कुछ लोग आबाद हैं तो यह ज़रूरी नहीं कि वे उन्हीं ख़ुसूसियात और उसी मिज़ाज व तबीयत के हों जो इस आलम के इनसान और हैवानात व पेड़-पौधों के लिये ज़रूरी समझे जाते हैं, बल्कि अक़्ल व समझ कहती है कि उनके मिज़ाज व तबीयत, उनकी ग़िज़ा व ज़रूरियात यहाँ के लोगों से बिल्कुल अलग हों, इसलिये एक को दूसरे पर क़ियास करने की कोई वजह नहीं।

इमाम राज़ी रह. की ताईद और इस सिलसिले की नयी मालूमात के लिये वह लेख काफ़ी है जो अमेरिकी ख़लाई मुसाफ़िर जॉन ग्लेन ने हाल ही में ख़ला (स्पेस) के सफ़र से वापस आकर प्रकाशित कराया है, जिसमें किरनों के साल का नाम देकर एक लम्बी मुद्दत व दूरी का पैमाना क़ायम किया और उसके ज़रिये अपनी ज़ेहनी पहुँच की हद तक ख़ला का कुछ अन्दाज़ा लगाया और फिर यह इक़रार किया है कि कुछ नहीं बताया जा सकता कि ख़ला की वुस्अत (लम्बाई-चौड़ाई और फैलाव) कितनी और कहाँ तक है।

क़ुरआन पाक के इस मुख़्तसर जुमले के साथ अब तमाम आलम और उसकी कायनात पर नज़र डालिये और अक़्ल व समझ की आँखों से देखिये कि हक़ तआला ने आलम की परवरिश का कैसा मज़बूत व स्थिर और अक़्लों को हैरान कर देने वाला निज़ाम बनाया है। अफ़लाक (आसमानों) से लेकर तत्वों तक, सय्यारों व सितारों से लेकर ज़र्रात तक हर चीज़ इस सिस्टम के बंधन में बंधी हुई है, और हकीमे मुतलक़ की ख़ास हिकमत व मर्ज़ी के मातहत हर चीज़ अपने-अपने काम में लगी हुई है। एक लुक़्मा जो इनसान के मुँह तक पहुँचता है अगर उसकी पूरी हक़ीक़त पर इनसान ग़ौर करे तो मालूम होगा कि उसकी तैयारी में आसमान और ज़मीन की तमाम ताक़तें और करोड़ों इनसानों और जानवरों की मेहनतें शामिल हैं। सारे आलम की ताक़तें महीनों ख़िदमत में व्यस्त रहीं जब यह लुक़्मा

तैयार हुआ, और यह सब कुछ इसलिये है कि इनसान इसमें सोच व विचार से काम ले और समझे कि अल्लाह तआला ने आसमान से लेकर ज़मीन तक अपनी तमाम मख़्लूक़ात को उसकी ख़िदमत में लगा रखा है तो जिस हस्ती को उसने कायनात का मख़दूम (सेवाओं का केन्द्र) बना रखा है वह भी बेकार व बेहूदा नहीं हो सकती, उसका भी कोई काम होगा, उसके ज़िम्मे भी कोई ख़िदमत होगी:

अब्र व बाद व मह व ख़ुर्शीद व फ़लक दर कारन्द
ता तू नाने ब-कफ़ आरी व ब-ग़फ़लत न-ख़ुरी

हमा अज़ बहरे तू सरगश्ता व फ़रमाँबरदार
शर्ते इन्साफ़ न-बाशद कि तू फ़रमाँ न-बरी

(ये अश्आर शेख़ सअदी रह. के हैं। फ़रमाते हैं कि बादल, हवा, चाँद, सूरज और आसमान सब काम में लगे हुए हैं ताकि तू अपनी ग़िज़ा पा सके और उसे ग़फ़लत से न खाये। कायनात की ये तमाम चीज़ें तेरे ताबे हैं और तेरे काम में लगी हैं, यह कोई इन्साफ़ की बात न होगी कि तू अपने ख़ालिक़ व मालिक का ताबेदार व फ़रमाँबरदार न बने।)

मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्नौरी

क़ुरआने हकीम ने इनसानी पैदाईश और इसकी ज़िन्दगी के मक़सद को इस आयत में स्पष्ट फ़रमाया है:

وَمَا خَلَقْتُ الْجِنَّ وَالْإِنْسَ إِلَّا لِيَعْبُدُونِ ٥ (٥٦:٨٢)

तर्जुमाः मैंने जिन्न और इनसान को और किसी काम के लिये नहीं बनाया सिवाय इसके कि वे मेरी इबादत करें। (सूरः 82 आयत 56)

उक्त तक़रीर से मालूम हुआ कि 'रब्बिल-आलमीन' एक हैसियत से पहले जुमले 'अल्हम्दु लिल्लाहि' की दलील है कि जब तमाम कायनात की तरबियत व परवरिश की ज़िम्मेदारी सिर्फ़ एक ज़ात अल्लाह तआला की है तो हम्द व सना (तारीफ़ व इबादत) की असली मुस्तहिक़ भी वही ज़ात हो सकती है। इसलिये पहली आयत 'अल्हम्दु लिल्लाहि रब्बिल-आलमीन' में हम्द व सना (तारीफ़) के साथ ईमान के सबसे पहले रुक्न अल्लाह तआला की तौहीद (एक माबूद होने) का बयान भी असरदार अन्दाज़ में आ गया।

दूसरी आयत में रहमत की सिफ़त का ज़िक्र रहमान व रहीम के लफ़्ज़ की सिफ़त से किया गया है। ये दोनों सीग़े (कलिमे) मुबालग़े (ज़्यादती) के हैं जिनमें अल्लाह की रहमत की वुस्अत व कसरत और कमाल का बयान है। इस सिफ़त के ज़िक्र करने में शायद इस तरफ़ इशारा है कि यह तमाम कायनात व मख़्लूक़ात की तरबियत व परवरिश की ज़िम्मेदारी जो हक़ तआला ने अपने ज़िम्मे ले रखी है वह किसी अपनी ज़रूरत या दबाव और मजबूरी से नहीं बल्कि यह सब कुछ उसकी सिफ़ते रहमत का तक़ाज़ा है, अगर पूरी कायनात न हो तो उसका कुछ नुक़सान नहीं, और हो जाये तो उस पर कुछ बोझ नहीं।

"मालिकि यौमिद्दीन" लफ़्ज़ 'मालिक' मिल्क से निकला है जिसके मायने हैं किसी चीज़ पर ऐसा क़ब्ज़ा कि वह उसमें तसर्रुफ़ (इख़्तियार चलाने और उलट-फेर) करने की जायज़ क़ुदरत रखता

हो। लफ़्ज दीन के मायने हैं जज़ा (बदला) देना। 'मालिकि यौमिद्दीन' का लफ़्ज़ी तर्जुमा हुआ "मालिक बदले के दिन का" यानी बदले के दिन में मिल्कियत रखने वाला। वह मिल्कियत किस चीज़ पर होगी? इसका ज़िक्र नहीं किया गया। तफ़सीरे कश्शाफ़ में है कि इसमें इशारा उमूम की तरफ़ है यानी बदले के दिन में तमाम कायनात और तमाम उमूर (मामलात) की मिल्कियत सिर्फ़ अल्लाह तआला ही की होगी। (तफ़सीरे कश्शाफ़)

'रोज़े जज़ा' की हक़ीक़त और अक़्ली तौर पर उसकी ज़रूरत

अब यहाँ चन्द बातें क़ाबिले ग़ौर हैं:-

अव्वल यह कि 'रोज़े जज़ा' (बदले का दिन) किस दिन का नाम है और उसकी क्या हक़ीक़त है? दूसरे यह कि अल्लाह तआला की मिल्कियत तमाम कायनात पर जिस तरह रोज़े जज़ा में होगी ऐसे ही आज भी है, फिर रोज़े जज़ा की क्या ख़ुसूसियत है?

पहली बात का जवाब यह है कि रोज़े जज़ा उस दिन का नाम है जिसको अल्लाह तआला ने अच्छे और बुरे आमाल का बदला देने के लिये मुक़र्रर फ़रमाया है। लफ़्ज़ "रोज़े जज़ा" से एक अज़ीमुश्शान फ़ायदा यह हासिल हुआ कि दुनिया नेक व बद आमाल की जज़ा व सज़ा की जगह नहीं, बल्कि एक दारुल-अमल (अमल करने की जगह) फ़र्ज़ अदा करने का दफ़्तर है, तन्ख़्वाह या सिला वसूल करने की जगह नहीं। इससे मालूम हो गया कि दुनिया में किसी को ऐश व आराम, दौलत व राहत से मालामाल देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि वह अल्लाह के नज़दीक मक़बूल व महबूब है या किसी को रंज व मुसीबत में मुब्तला देखकर यह नहीं क़रार दिया जा सकता कि वह अल्लाह तआला के नज़दीक नापसन्दीदा और उसके ग़ुस्से का शिकार है। जिस तरह दुनिया के दफ़्तरों और कारख़ानों में किसी को अपना फ़र्ज़ अदा करने में लगा देखा जाये तो कोई अक़्लमन्द उसको मुसीबत का मारा नहीं कहता, और न वह ख़ुद अपनी मशक़्क़त के बावजूद अपने आपको मुसीबत में गिरफ़्तार समझता है, बल्कि वह उस मेहनत व मशक़्क़त को अपनी सबसे बड़ी कामयाबी ख़्याल करता है और कोई मेहरबान उसको उस मशक़्क़त से मुक्त करना चाहे तो वह उसको अपना सबसे बड़ा दुश्मन ख़्याल करता है, क्योंकि वह उस तीस दिन की मेहनत के पीछे उस राहत को देख रहा है जो उसको तन्ख़्वाह की शक्ल में मिलने वाली है।

यही वजह है कि इस दुनिया में अम्बिया अलैहिमुस्सलाम और उनके बाद औलिया-अल्लाह सबसे ज़्यादा मुसीबत व बला में मुब्तला होते हैं, और वे अपनी उस हालत पर निहायत मुत्मईन और कई बार ख़ुश नज़र आते हैं:

न-शवद् नसीबे दुश्मन कि शवद् हलाके तेग़त
सरे दोस्ताँ सलामत कि तू ख़ंजर आज़माई

(दुश्मन का ऐसा नसीब न हो कि वह तेरी तलवार से हलाक हो, दोस्तों के सर सलामत मौजूद हैं ताकि तू अपने ख़ंजर चलाने का शौक़ पूरा कर सके। मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी)

ग़र्ज़ यह कि दुनिया का ऐश व आराम हक़ व सदाक़त की और रंज व मुसीबत बद-अमली की

यक़ीनी निशानी नहीं है, हाँ कभी-कभी किसी-किसी अमल की जज़ा या सज़ा का हल्का सा नमूना दुनिया में भी ज़ाहिर कर दिया जाता है, वह उसका पूरा बदला नहीं होता महज़ तंबीह करने (चेतावनी देने) के लिये एक नमूना होता है। इसके बारे में क़ुरआने करीम में इरशाद है:

وَلَنُذِيقَنَّهُم مِّنَ الْعَذَابِ الْأَدْنَىٰ دُونَ الْعَذَابِ الْأَكْبَرِ لَعَلَّهُمْ يَرْجِعُونَ ○ (۳۲:۲۱)

"यानी हम लोगों को (आख़िरत के) बड़े अज़ाब से पहले (कई बार) दुनिया में एक क़रीबी अज़ाब का मज़ा चखा देते हैं ताकि वे बाज़ आ जायें।" (सूरः 32 आयत 21)

और दूसरी जगह इरशाद है:

كَذَٰلِكَ الْعَذَابُ ۖ وَلَعَذَابُ الْآخِرَةِ أَكْبَرُ ۚ لَوْ كَانُوا يَعْلَمُونَ ○ (۶۸:۳۳)

"ऐसा होता है अज़ाब, और आख़िरत का अज़ाब बहुत बड़ा है, अगर वे समझें।"

(सूरः 68 आयत 33)

ग़र्ज़ यह कि दुनिया की राहत व मुसीबत कई बार तो इम्तिहान और आज़माईश होती है और कभी अज़ाब भी होती है, मगर वह अमल का पूरा बदला नहीं होता बल्कि एक नमूना होता है, क्योंकि यह सब कुछ चन्द दिन का और महज़ आरज़ी (अस्थाई) है, मदार व मेयार वह राहत व तकलीफ़ है जो हमेशा क़ायम रहने वाली है। और जो इस आलम से गुज़रने के बाद आख़िरत के आलम में आने वाली है, उसका नाम रोज़े जज़ा है। और जब यह मालूम हो गया कि नेक व बद अमल का बदला या पूरा बदला इस दुनिया में नहीं मिलता और अदल व इन्साफ़ और अक़्ल का तक़ाज़ा यह है कि नेक व बद अच्छा और बुरा बराबर न रहे बल्कि हर अमल की जज़ा या सज़ा मिलनी चाहिये। इसलिये ज़रूरी है कि इस आलम के बाद कोई दूसरा आलम (जहान) हो जिसमें हर छोटे बड़े और अच्छे बुरे अमल का हिसाब और उसकी जज़ा या सज़ा इन्साफ़ के मुताबिक़ मिले। उसी को क़ुरआने करीम की इस्तिलाह में रोज़े जज़ा या क़ियामत या आख़िरत कहा जाता है। क़ुरआन ने ख़ुद इस मज़मून को सूरः मोमिन में वज़ाहत से बयान फ़रमाया है:

وَمَا يَسْتَوِي الْأَعْمَىٰ وَالْبَصِيرُ ○ وَالَّذِينَ آمَنُوا وَعَمِلُوا الصَّالِحَاتِ وَلَا الْمُسِيءُ ۚ قَلِيلًا مَّا تَتَذَكَّرُونَ ○ إِنَّ السَّاعَةَ لَآتِيَةٌ لَّا رَيْبَ فِيهَا وَلَٰكِنَّ أَكْثَرَ النَّاسِ لَا يُؤْمِنُونَ ○ (آیت ۵۸:۵۹)

"यानी बीना और नाबीना (देखने वाला और अन्धा) और (एक) वे लोग जो ईमान लाये और उन्होंने अच्छे काम किये और (दूसरे) बद-किरदार आपस में बराबर नहीं हो सकते। तुम लोग बहुत ही कम समझते हो। क़ियामत तो ज़रूर ही आकर रहेगी (ताकि हर एक अमल का पूरा बदला उसको मिल जाये) उसके आने में किसी तरह का शक है ही नहीं, मगर अक्सर लोग नहीं ईमान लाते।"

(सूरः 58 आयत 59)

मालिक कौन है?

"मालिकि यौमिद्दीन" में दूसरी क़ाबिले ग़ौर बात यह है कि हर अक़्ल वाले के नज़दीक यह बात आम सी और बिल्कुल ज़ाहिर है कि हक़ीक़ी मालिक तमाम कायनात के ज़र्रे-ज़र्रे की वही पाक

ज़ात है जिसने उनको पैदा किया, बढ़ाया, परवरिश की और जिसकी मिल्कियत हर चीज़ पर मुकम्मल है, ज़ाहिर पर भी बातिन पर भी, ज़िन्दा पर भी मुर्दा पर भी, और जिसकी मिल्कियत की न कोई शुरूआत है न अंत। इसके विपरीत इनसान की मिल्कियत को देखिये वह शुरू व ख़त्म के दायरे में सीमित है, पहले नहीं थी और फिर न रहेगी, तथा उसकी मिल्कियत व इख़्तियार चीज़ों के ज़ाहिर पर है बातिन पर नहीं, ज़िन्दा पर है मुर्दा पर नहीं। इसलिये हर समझदार के नज़दीक सिर्फ़ रोज़े जज़ा की नहीं बल्कि दुनिया में भी तमाम कायनात की हकीक़ी (वास्तविक) मिल्कियत सिर्फ़ हक़ तआला ही की है। फिर इस आयत में अल्लाह तआला को ख़ास रोज़े जज़ा का मालिक फ़रमाने में क्या हिक्मत है?

सो क़ुरआने करीम की दूसरी आयत में ग़ौर करने से मालूम हुआ कि दुनिया में भी अगरचे हकीक़ी (असली) और मुकम्मल मिल्कियत तमाम कायनात पर सिर्फ़ परवर्दिगारे आलम ही की है लेकिन उसी ने अपने करम और हिक्मते बालिग़ा से एक प्रकार की अधूरी मिल्कियत इनसान को भी अता फ़रमा रखी है और दुनिया के क़ानूनों में उसकी मिल्कियत का काफ़ी एहतिमाम भी किया गया है। आजकी दुनिया में इनसान माल व दौलत का मालिक है, ज़मीन जायदाद का मालिक है, कोठी बंगले और फ़र्नीचर का मालिक है, नौकरों और ख़ादिमों का मालिक है और यह नाक़िस सी मिल्कियत जो उसको महज़ आज़माईश के लिये दी गई थी वह इसी में घमंडी और और बद-मस्त हो गया, इस आयत में हक़ तआला ने "मालिकि यौमिद्दीन" फ़रमाकर उस घमंडी व ग़ाफ़िल इनसान को आगाह फ़रमाया कि ये मिल्कियतें और सब ताल्लुक़ात व रब्ते सिर्फ़ चन्द दिन के लिये हैं, एक दिन ऐसा आने वाला है जिसमें कोई किसी चीज़ का ज़ाहिरी तौर पर भी मालिक न रहेगा, न कोई किसी का ख़ादिम रहेगा न मख़दूम, न कोई किसी का आक़ा रहेगा न ग़ुलाम, तमाम कायनात की मिल्क और मुल्क सिर्फ़ एक पाक ज़ात अल्लाह तआला की ही होगी।

इस आयत की पूरी तफ़सीर और रोज़े जज़ा की वज़ाहत सूरः मोमिन की इन आयतों में है:

يَوْمَ هُمْ بٰرِزُوْنَ، لَا يَخْفٰى عَلَى اللّٰهِ مِنْهُمْ شَيْءٌ لِمَنِ الْمُلْكُ الْيَوْمَ، لِلّٰهِ الْوَاحِدِ الْقَهَّارِ ۝ اَلْيَوْمَ تُجْزٰى كُلُّ نَفْسٍ بِمَا كَسَبَتْ لَا ظُلْمَ الْيَوْمَ اِنَّ اللّٰهَ سَرِيْعُ الْحِسَابِ ۝ (آیت ١٦، ١٧)

इसमें रोज़े जज़ा (बदले के दिन) का बयान करते हुए फ़रमायाः

"जिस दिन सब लोग (ख़ुदा के) सामने आ मौजूद होंगे (कि) उनकी कोई बात ख़ुदा से (ज़ाहिरी एतिबार से भी) छुपी न रहेगी। आज के दिन किसकी हुकूमत होगी? बस अल्लाह ही की होगी, जो यक्ता और ग़ालिब है। आज हर शख़्स को उसके किये का बदला दिया जायेगा, आज किसी पर ज़ुल्म न होगा, अल्लाह तआला बहुत जल्द हिसाब लेने वाले हैं।"(सूरः मोमिन आयत 16,17)

सूरः फ़ातिहा (अल्हम्दु शरीफ़) के शुरू में बयान किया गया था कि इस सूरत की तीन शुरू की आयतों में अल्लाह तआला की हम्द व सना (तारीफ़) का बयान है, ये तीनों आयतें आ चुकीं और इनकी तफ़सीर में आप यह भी मालूम कर लीजिये कि पहली दो आयतों में हम्द व सना (तारीफ़ व प्रशंसा) के तहत में ईमान के बुनियादी उसूल, अल्लाह तआला के वजूद और उसकी तौहीद (एक माबूद होने) का बयान भी एक अनोखे और लाजवाब अन्दाज़ में आ गया है। इस तीसरी आयत की तफ़सीर में आपने अब मालूम कर लिया कि इसके सिर्फ़ दो लफ़्ज़ों में हम्द व सना के साथ इस्लाम के

अज़ीमुश्शान इन्क़िलाबी अक़ीदे यानी क़ियामत व आख़िरत का बयान भी दलील के साथ आ गया, अब चौथी आयत का बयान आता है।

"इय्या-क नअ़्बुदु व इय्या-क नस्तअ़ीन" इस आयत में एक पहलू हम्द व सना (तारीफ़ व प्रशंसा) का और दूसरा दुआ व दरख़्वास्त का है। **नअ़्बुदु** इबादत से निकला है, जिसके मायने हैं किसी की हद से ज़्यादा ताज़ीम व मुहब्बत की वजह से उसके सामने अपनी हद से ज़्यादा आजिज़ी और फ़रमाँबरदारी का इज़हार। **नस्तअ़ीन** इस्तिआनत से निकला है जिसके मायने हैं किसी से मदद माँगना। आयत का तर्जुमा यह है कि "हम तेरी ही इबादत करते हैं और सिर्फ़ तुझसे ही मदद माँगते हैं"। इनसान पर तीन हालात गुज़रते हैं गुज़रा वक़्त, मौजूदा वक़्त, आने वाला वक़्त। पिछली तीन आयतों में से "अल्हम्दु लिल्लाहि रब्बिल्-आलमीन" और "अर्रहमानिर्रहीम" में इनसान को इस पर चेता दिया गया कि वह अपने माज़ी (गुज़रे वक़्त) और हाल (मौजूदा वक़्त) में सिर्फ़ अल्लाह तआला का मोहताज है, कि उसको माज़ी में नेस्ती से हस्ती में लाया (यानी वजूद बख़्शा) और उसको तमाम कायनात से ज़्यादा बेहतरीन शक्ल व सूरत और अक़्ल व समझ अता फ़रमाई, और हाल (मौजूदा वक़्त) में उसकी परवरिश और तरबियत का सिलसिला जारी है, और "मालिकि यौमिद्दीन" में यह बता दिया कि मुस्तक़बिल (आने वाले वक़्त) में भी वह ख़ुदा ही का मोहताज है कि रोज़े जज़ा में उसके सिवा किसी का कोई मददगार नहीं हो सकता।

और जब तीनों आयतों ने यह वाज़ेह कर दिया कि इनसान अपनी ज़िन्दगी के तीनों दौर में ख़ुदा ही का मोहताज है तो इसका तबई और अक़्ली तक़ाज़ा यह हुआ कि इबादत भी उसी की की जाये, क्योंकि इबादत जो इन्तिहाई ताज़ीम व मुहब्बत के साथ अपनी इन्तिहाई आजिज़ी और पस्ती के इज़हार का नाम है वह किसी दूसरी हस्ती के लायक़ नहीं। इसका नतीजा लाज़िमी यह है कि एक आक़िल इनसान पुकार उठे कि हम तेरे सिवा किसी की इबादत नहीं करते। तबीयत के इसी तक़ाज़े और जज़्बे को "इय्या-क नअ़्बुदु" में ज़ाहिर फ़रमाया गया है। और जब यह मालूम हो गया कि हाजत व ज़रूरत पूरी करना सिर्फ़ एक ही ज़ात अल्लाह तआला का काम है तो अक़्ली व तबई तक़ाज़ा यह है कि अपने कामों में मदद भी सिर्फ़ उसी से माँगनी चाहिये। इसी अक़्ली व तबई तक़ाज़े को "व इय्या-क नस्तअ़ीन" में ज़िक्र फ़रमाया गया है। (तफ़सीर रूहुल-बयान)

ग़र्ज़ कि इस चौथी आयत में एक हैसियत से अल्लाह तआला की हम्द व सना (तारीफ़) है कि इबादत व मदद के लायक़ सिर्फ़ वही है, और दूसरी हैसियत से इनसान की दुआ व दरख़्वास्त है कि हमारी मदद फ़रमाये, और तीसरी हैसियत और भी है कि इसमें इनसान को इसकी तालीम दी गई है कि अल्लाह के सिवा किसी की इबादत न करे और वास्तविक तौर पर अल्लाह के सिवा किसी को ज़रूरत व हाजत पूरी करने वाला न समझे और किसी के सामने सवाल का हाथ न फैलाये। किसी नबी या वली वग़ैरह को वसीला क़रार देकर अल्लाह तआला से दुआ माँगना इसके ख़िलाफ़ नहीं।

इस आयत में यह बात भी क़ाबिले ग़ौर है कि इरशाद यह है कि "हम तुझसे ही मदद माँगते हैं" किस काम में मदद माँगते हैं इसका ज़िक्र नहीं। जमहूर मुफ़स्सिरीन ने लिखा है कि इसका ज़िक्र न करने में उमूम की तरफ़ इशारा है कि हम अपनी इबादत और हर दीनी व दुनियावी काम और हर मक़सद में सिर्फ़ आप ही की मदद चाहते हैं।

फिर इबादत सिर्फ़ नमाज़ रोज़े का नाम नहीं, इमाम ग़ज़ाली रहमतुल्लाहि अलैहि ने अपनी किताब "अरबईन" में इबादत की दस क़िस्में लिखी हैं:

1. नमाज़। 2. ज़कात। 3. रोज़ा। 4. हज। 5. तिलावते क़ुरआन। 6. हर हालत में अल्लाह का ज़िक्र करना। 7. हलाल रोज़ी के लिये कोशिश करना। 8. पड़ोसी और साथी के हुक़ूक़ अदा करना। 9. लोगों को नेक कामों का हुक्म देना और बुरे कामों से मना करना। 10. रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की सुन्नत का इत्तिबा करना।

इसलिये इबादत में अल्लाह तआला के साथ किसी को शरीक न करने के मायने यह होंगे कि न किसी की मुहब्बत अल्लाह तआला के बराबर हो, न किसी का ख़ौफ़ उसके बराबर हो, न किसी से उम्मीद उसकी तरह हो, न किसी पर भरोसा अल्लाह के जैसा हो, न किसी की इताअत व ख़िदमत और काम को इतना ज़रूरी समझे जितना अल्लाह तआला की इबादत को, न अल्लाह तआला की तरह किसी की नज़्र और मन्नत माने, न अल्लाह तआला की तरह किसी दूसरे के सामने अपनी मुकम्मल आजिज़ी और पस्ती का इज़हार करे, न वे काम किसी दूसरे के लिये करे जो इन्तिहाई पस्ती और ख़ुद को झुकाने की अलामात हैं जैसे रुकूअ, सज्दा।

आख़िरी तीन आयतें जिनमें इनसान की दुआ व दरख़्वास्त का मज़मून है और एक ख़ास दुआ की तालीम है, ये हैं:

اِهْدِنَا الصِّرَاطَ الْمُسْتَقِيْمَ ○ صِرَاطَ الَّذِيْنَ اَنْعَمْتَ عَلَيْهِمْ، غَيْرِ الْمَغْضُوْبِ عَلَيْهِمْ وَلَا الضَّآلِّيْنَ ○

"इह्दिनस्सिरातल् मुस्तक़ीम। सिरातल्लज़ी-न अन्अम्-त अलैहिम् ग़ैरिल् मग़ज़ूबि अलैहिम् वलज़्ज़ाल्लीन।"

जिसका तर्जुमा यह है कि "बतला दीजिये हमको रास्ता सीधा। रास्ता उन लोगों का जिन पर आपने इनाम फ़रमाया। न रास्ता उन लोगों का जिन पर आपका ग़ज़ब किया गया, और न उन लोगों का जो रास्ते से गुम हो गये।"

हिदायत के दर्जे

इन तीनों आयतों में चन्द बातें क़ाबिले ग़ौर हैं:

यहाँ पहली बात क़ाबिले ग़ौर यह है कि सिराते मुस्तक़ीम (सीधे रास्ते) की हिदायत के लिये दुआ जो इस आयत में तालीम फ़रमाई गई है उसके मुख़ातब जिस तरह तमाम इनसान और आम मोमिनीन हैं, इसी तरह औलिया-अल्लाह और हज़राते अम्बिया अलैहिमुस्सलाम भी उसके मामूर (पाबन्द) हैं, जो बिला शुब्हा हिदायत पाये हुए बल्कि दूसरों के लिये हिदायत का ज़रिया और स्रोत हैं, फिर इस पहले से हासिल चीज़ की बार-बार दुआ माँगने का क्या मतलब है?

इसका जवाब हिदायत की पूरी हक़ीक़त मालूम करने पर मौक़ूफ़ है। इसको किसी क़द्र तफ़सील के साथ बयान किया जाता है। जिससे उक्त सवाल के अलावा उन तमाम शुब्हात का भी जवाब मालूम हो जायेगा जो हिदायत के मफ़हूम और मतलब के बारे में क़ुरआने करीम के बहुत से मक़ामात पर उमूमन पेश आते हैं और हिदायत की हक़ीक़त से नावाक़िफ़ शख़्स क़ुरआने करीम की बहुत सी

आयतों में आपस में टकराव, विरोधाभास और इख़्तिलाफ़ महसूस करने लगता है।

लफ़्ज़ "हिदायत" की बेहतरीन तशरीह इमाम राग़िब अस्फ़हानी रहमतुल्लाहि अलैहि ने अपनी किताब "मुफ़्रदातुल-क़ुरआन" में तहरीर फ़रमाई है, जिसका ख़ुलासा यह है कि हिदायत के असली मायने हैं किसी शख़्स की मन्ज़िले मक़सूद की तरफ़ मेहरबानी के साथ रहनुमाई करना और हिदायत करना, असली मायने में यह सिर्फ़ अल्लाह तआला ही का फ़ेल है जिसके विभिन्न दर्जे हैं:

एक दर्जा हिदायत का आम है जो कायनात और मख़्लूक़ात की तमाम क़िस्मों जमादात (बेजान चीज़ों), नबातात (पेड़-पौधों और बनस्पति), हैवानात (जानदार) वग़ैरह को शामिल है। यहाँ आप यह ख़्याल न करें कि इन बेजान बेशऊर चीज़ों को हिदायत से क्या काम? क्योंकि क़ुरआनी तालीमात से यह वाज़ेह है कि कायनात की तमाम क़िस्में और उनका ज़र्रा-ज़र्रा अपने-अपने दर्जे के मुताबिक़ ज़िन्दगी व एहसास भी रखता है और अक़्ल व शऊर भी। यह दूसरी बात है कि यह जौहर किसी क़िस्म और प्रजाति में कम किसी में ज़्यादा है। इसी वजह से जिन चीज़ों में यह जौहर (माद्दा और रूह) बहुत कम है उनको बेजान, बेशऊर समझा और कहा जाता है। अल्लाह के अहकाम में भी उनके शऊर की कमज़ोरी का इतना असर आया है कि उनको अहकाम का मुकल्लफ़ (पाबन्द) नहीं बनाया गया। जिन मख़्लूक़ात में ज़िन्दगी के आसार नुमायाँ (ज़ाहिर और स्पष्ट) हैं मगर अक़्ल व शऊर नुमायाँ नहीं उनको ज़िन्दगी वाला, जानदार मगर बेअक़्ल व बेशऊर कहा जाता है और जिनमें ज़िन्दगी के साथ अक़्ल व शऊर के आसार भी नुमायाँ नज़र आते हैं उनको अक़्ल वाला कहा जाता है, और इसी अलग-अलग दर्जे होने और अक़्ल व शऊर की कमी-ज़्यादती की वजह से तमाम कायनात में शरीअत के अहकाम का मुकल्लफ़ (पाबन्द) सिर्फ़ इनसान और जिन्नात को क़रार दिया गया है, कि इनमें अक़्ल व शऊर भी मुकम्मल है, मगर इसके मायने यह नहीं कि दूसरी क़िस्में और जातियों में ज़िन्दगी व एहसास या अक़्ल व शऊर बिल्कुल नहीं, क्योंकि हक़ तआला का इरशाद है:

وَاِنْ مِّنْ شَیْءٍ اِلَّا یُسَبِّحُ بِحَمْدِهٖ وَلٰكِنْ لَّا تَفْقَهُوْنَ تَسْبِیْحَهُمْ، (سورة بنی اسرآئیل: ٤٤)

"यानी कोई चीज़ ऐसी नहीं जो तारीफ़ के साथ उसकी पाकी (ज़बान या अपने हाल से) बयान न करती हो, लेकिन तुम लोग उनकी पाकी बयान करने को समझते नहीं हो।"

और सूरः नूर में इरशाद है:

اَلَمْ تَرَ اَنَّ اللّٰهَ یُسَبِّحُ لَهٗ مَنْ فِی السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ وَالطَّیْرُ صٰٓفّٰتٍ، كُلٌّ قَدْ عَلِمَ صَلَاتَهٗ وَتَسْبِیْحَهٗ، وَاللّٰهُ عَلِیْمٌۢ بِمَا یَفْعَلُوْنَ۝ (آیت ٤١)

"यानी क्या तुझको मालूम नहीं कि अल्लाह तआला की पाकी बयान करते हैं सब जो कुछ आसमानों में और ज़मीन में (मख़्लूक़ात) हैं, और (ख़ासकर) परिन्दे जो पंख फैलाये हुए उड़ते फिरते हैं, सब को अपनी-अपनी दुआ और तस्बीह मालूम है, और अल्लाह तआला को उन लोगों के सब कामों का पूरा इल्म है।"

ज़ाहिर है कि अल्लाह तआला की हम्द व सना (तारीफ़ व प्रशंसा) और उसकी पाकी बयान करना अल्लाह तआला की मारिफ़त (पहचान) पर मौक़ूफ़ है, और यह भी ज़ाहिर है कि अल्लाह तआला की मारिफ़त ही सबसे बड़ा इल्म है। और यह इल्म अक़्ल व शऊर के बिना नहीं हो सकता।

इसलिये इन आयतों से साबित हुआ कि तमाम कायनात के अन्दर रूह व ज़िन्दगी भी है, समझ व एहसास भी, अक़्ल व शऊर भी, मगर बाज़ कायनात-में यह जौहर इतना कम और छुपा हुआ है कि आम देखने वालों को उसका एहसास नहीं होता, इसी लिये आम बोल-चाल में उनको बेजान या बेअक़्ल कहा जाता है, और इस बिना पर उनको शरीअत के अहकाम का मुकल्लफ़ (पाबन्द) नहीं बनाया गया। क़ुरआने करीम का यह फ़ैसला उस वक़्त का है जब दुनिया में न कहीं कोई फ़ल्सफ़ी था, न कोई फ़ल्सफ़ा किसी मुरत्तब शक्ल में था, बाद में आने वाले फ़लॉस्फ़रों ने भी अपने-अपने वक़्त में इसकी तस्दीक़ (पुष्टि) की। क़दीम (प्राचीन) फ़ल्सफ़े में भी इस ख़्याल के कुछ लोग गुज़रे हैं और नये फ़ल्सफ़े और वैज्ञानिकों ने तो पूरी वज़ाहत के साथ इसको साबित किया है।

ग़र्ज़ यह कि अल्लाह की हिदायत का यह पहला दर्जा तो तमाम मख़्लूक़ात, जमादात (बेजान चीज़ों), नबातात (वनस्पति और पेड़-पौधों वग़ैरह), हैवानात (जानदार और पशु-पक्षियों आदि) इनसान और जिन्नात को शामिल है, इसी आम हिदायत का ज़िक्र क़ुरआने करीम की इस आयत में फ़रमाया गया है:

اَعْطٰى كُلَّ شَىْءٍ خَلْقَهٗ ثُمَّ هَدٰى ○ (٢٠ : ٥٠)

यानी "अल्लाह तआला ने हर चीज़ को उसकी ख़िल्क़त (पैदाईश और ख़ास शक्ल व सूरत) अता फ़रमाई है, फिर उस बनावट और प्रजाति के मुनासिब उसको हिदायत दी।"

और यही मज़मून सूरः अअ़्ला में इन अलफ़ाज़ में इरशाद हुआ है:

سَبِّحِ اسْمَ رَبِّكَ الْاَعْلَى ○ الَّذِىْ خَلَقَ فَسَوّٰى ○ وَالَّذِىْ قَدَّرَ فَهَدٰى ○

"यानी आप (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) अपने बुलन्द शान वाले परवर्दिगार की तस्बीह कीजिये जिसने सारी मख़्लूक़ात को बनाया, फिर ठीक बनाया। और जिसने तजवीज़ किया, फिर राह बताई।"

यानी जिसने तमाम मख़्लूक़ात के लिये ख़ास-ख़ास मिज़ाज और ख़ास-ख़ास ख़िदमतें तजवीज़ (तय) फ़रमाकर हर एक को उसके मुनासिब हिदायत (तालीम) कर दी।

इसी आम हिदायत का नतीजा है कि कायनाते आलम की तमाम जिन्सें और क़िस्में, जातियाँ और प्रजातियाँ अपना-अपना तयशुदा फ़र्ज़ (ज़िम्मेदारी और कर्तव्य) निहायत सलीक़े से अदा कर रहे हैं। जो चीज़ जिस काम के लिये बना दी है वह उसको ऐसी ख़ूबी के साथ अदा कर रही है कि अक़्ल हैरान रह जाती है। हज़रत मौलाना रूमी रहमतुल्लाहि अलैहि ने इसी मज़मून को अपने इस शे'र में बयान फ़रमाया है:

ख़ाक व बाद व आब व आतिश बन्दा अन्द
बा मन व तू मुर्दा, बा हक़ ज़िन्दा अन्द

(यानी आग, पानी, मिट्टी और हवा सब अपने काम में लगे हुए हैं, वे अगरचे तेरे नज़दीक मुर्दा और बेजान हैं लेकिन अल्लाह ने उनके अन्दर भी ज़िन्दगी व शऊर रखा है।)

मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज़ानवी

ज़बान से निकली हुई आवाज़ के मायने का इल्म व एहसास न नाक कर सकती है न आँख,

हालांकि ये ज़बान से ज़्यादा क़रीब हैं। इस इल्म व समझ के फ़रीज़े को अल्लाह तआला ने कानों के सुपुर्द किया है, वही ज़बान की बात को लेते हैं और समझते व एहसास करते हैं। इसी तरह कानों से देखने या सूँघने का काम नहीं लिया जा सकता, नाक से देखने या सुनने का काम नहीं लिया जा सकता। सूरः मरियम में इसी मज़मून को इन अलफ़ाज़ में बयान फ़रमाया गया है:

إِنْ كُلُّ مَنْ فِي السَّمٰوٰتِ وَالْأَرْضِ إِلَّا آتِي الرَّحْمٰنِ عَبْدًا ۝ (١٩:٩٣)

"यानी कोई नहीं आसमान और ज़मीन में जो न आये रहमान का बन्दा होकर।"

हिदायत का दूसरा दर्जा इसके मुक़ाबले में ख़ास है। यानी सिर्फ़ उन चीज़ों के साथ मख़्सूस है जो उर्फ़ (आम बोल-चाल) में अक़्ल व शऊर वाली कहलाती हैं, यानी इनसान और जिन्नात। यह हिदायत अम्बिया और आसमानी किताबों के ज़रिये हर इनसान को पहुँचती है। फिर कोई इसको क़ुबूल करके मोमिन व मुस्लिम हो जाता है कोई रद्द करके काफ़िर ठहरता है।

तीसरा दर्जा हिदायत का इससे भी ज़्यादा ख़ास है कि सिर्फ़ मोमिनों व मुत्तक़ियों के साथ मख़्सूस है। यह हिदायत भी अल्लाह तआला की तरफ़ से डायरेक्ट इनसान को अता होती है। इस हिदायत का दूसरा नाम तौफ़ीक़ है, यानी ऐसे असबाब और हालात पैदा कर देना कि क़ुरआनी हिदायतों का क़ुबूल करना और उन पर अमल करना आसान हो जाये, और उनकी ख़िलाफ़वर्ज़ी (ख़िलाफ़ अमल करना और उल्लंघन) दुश्वार हो जाये। इस तीसरे दर्जे का फैलाव, असीमितता और इसके दर्जात ग़ैर-मुतनाही हैं (यानी उनकी कोई हद और सीमा नहीं), यही दर्जा इनसान की तरक़्क़ी का मैदान है। नेक आमाल के साथ-साथ हिदायत के इस दर्जे में इज़ाफ़ा होता रहता है। क़ुरआने करीम की अनेक आयतों में इस ज़्यादती और इज़ाफ़े का ज़िक्र है। जैसे:

وَالَّذِيْنَ اهْتَدَوْا زَادَهُمْ هُدًى (٤٧:١٧)

"और जिन लोगों ने हिदायत का रास्ता इख़्तियार किया है अल्लाह ने उन्हें हिदायत में और तरक़्क़ी दी है।"

وَمَنْ يُّؤْمِنْ بِاللّٰهِ يَهْدِ قَلْبَهٗ

"जो शख़्स अल्लाह पर ईमान लाये उसके दिल को हिदायत कर देते हैं।"

وَالَّذِيْنَ جَاهَدُوْا فِيْنَا لَنَهْدِيَنَّهُمْ سُبُلَنَا. (٢٩:٦٩)

"जो लोग हमारे रास्ते में मुजाहदा (मेहनत व कोशिश) करते हैं हम उनको अपने रास्तों की और ज़्यादा हिदायत कर देते हैं।"

यही वह मैदान है जहाँ हर बड़े से बड़ा नबी व रसूल और वलीयुल्लाह आख़िर उम्र तक हिदायत व तौफ़ीक़ की ज़्यादती का तालिब नज़र आता है।

हिदायत के दर्जों की इस तशरीह (वज़ाहत) से आपने समझ लिया होगा कि हिदायत एक ऐसी चीज़ है जो सब को हासिल भी है और उसके मज़ीद बुलन्द और ऊँचे दर्जे हासिल करने से किसी बड़े से बड़े इनसान को अलग नहीं रखा जा सकता। इसी लिये सूरः फ़ातिहा की अहम तरीन दुआ हिदायत को क़रार दिया गया जो एक मामूली मोमिन के लिये भी मुनासिबे हाल है और बड़े से बड़े रसूल और वली के लिये भी उतनी ही अहम है। यही वजह है कि नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की

आख़िर उम्र में सूरः फ़तह के अन्दर फ़त्हे-मक्का के फ़ायदे व लाभ बतलाते हुए यह भी इरशाद हुआः

وَيَهْدِيَكَ صِرَاطًا مُّسْتَقِيمًا ۝

यानी "मक्का मुकर्रमा इसलिये आपके हाथों फ़तह कराया गया ताकि आप (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) को सिराते मुस्तक़ीम (सीधे रास्ते) की हिदायत हो।"

ज़ाहिर है कि सैयदुल-अम्बिया सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम पहले से न सिर्फ़ हिदायत याफ़्ता बल्कि दूसरों के लिये भी हिदायत का पैकर थे, फिर इस मौक़े पर आपको हिदायत होने के इसके सिवा कोई मायने नहीं हो सकते कि हिदायत का कोई बहुत आला मक़ाम आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को उस वक़्त हासिल हुआ।

हिदायत की इस तशरीह (व्याख्या और वज़ाहत) से आपके लिये क़ुरआन समझने में बहुत से फ़ायदे हासिल हो गये।

पहला फ़ायदा यह कि क़ुरआन में कहीं तो हिदायत को हर मोमिन व काफ़िर के लिये बल्कि तमाम मख़्लूक़ात के लिये आम फ़रमाया गया है और कहीं इसको सिर्फ़ मुत्तक़ी लोगों के साथ मख़्सूस लिखा गया, जिसमें नावाक़िफ़ को एक टकराव और मज़मून में विरोधाभास का शुब्हा हो सकता है। हिदायत के आम व ख़ास दर्जे मालूम होने के बाद यह शुब्हा ख़ुद-ब-ख़ुद दूर हो जाता है कि एक दर्जा सब को आम और शामिल है और दूसरा दर्जा मख़्सूस है।

दूसरा फ़ायदा यह है कि क़ुरआन में एक तरफ़ तो जगह-जगह यह इरशाद है कि अल्लाह तआला ज़ालिमों या फ़ासिक़ों को हिदायत नहीं फ़रमाते, और दूसरी तरफ़ कई-कई बार यह इरशाद है कि अल्लाह तआला सब को हिदायत फ़रमाते हैं। इसका जवाब भी दर्जों की तफ़सील से वाज़ेह हो गया कि आम हिदायत सब को की जाती है और हिदायत का तीसरा मख़्सूस दर्जा ज़ालिमों व फ़ासिक़ों (बदकारों) को नसीब नहीं होता।

तीसरा फ़ायदा यह है कि हिदायत के तीन दर्जों में से पहला और तीसरा दर्जा बिला-वास्ता (डायरेक्ट तौर पर) हक़ तआला का फ़ेल है, इसमें किसी नबी या रसूल का दख़ल नहीं, अम्बिया अलैहिमुस्सलाम और रसूलों का काम सिर्फ़ हिदायत के दूसरे दर्जे से मुताल्लिक़ है।

क़ुरआने करीम में जहाँ कहीं अम्बिया अलैहिमुस्सलाम को हादी क़रार दिया है वह इसी दूसरे दर्जे के एतिबार से है। और जहाँ यह इरशाद हैः

إِنَّكَ لَا تَهْدِي مَنْ أَحْبَبْتَ. (٢٨:٥٦)

यानी "आप (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) हिदायत नहीं कर सकते जिसको चाहें" तो इसमें हिदायत का तीसरा दर्जा मुराद है। यानी तौफ़ीक़ देना आपका काम नहीं।

ग़र्ज़ यह कि "इह्दिनस्सिरातल् मुस्तक़ीम" एक जामे और अहम तरीन दुआ है जो इनसान को सिखला दी गई है। इनसान का कोई फ़र्द इससे बेनियाज़ नहीं। दीन और दुनिया दोनों में सिराते मुस्तक़ीम (सही रास्ते) के बग़ैर फ़लाह व कामयाबी नहीं। दुनिया की उलझनों में भी सिराते मुस्तक़ीम की दुआ अक्सीर नुस्ख़ा है मगर लोग तवज्जोह नहीं करते। तर्जुमा इस आयत का यह है कि "बतला दीजिये हमको रास्ता सीधा।"

'सिराते मुस्तक़ीम' कौनसा रास्ता है?

सीधा रास्ता वह है जिसमें मोड़ न हो, और मुराद इससे दीन का वह रास्ता है जिसमें इफ़रात व तफ़रीत न हो। 'इफ़रात' के मायने हैं हद से आगे बढ़ना और 'तफ़रीत' के मायने हैं कोताही करना। फिर इसके बाद की दो आयतों में उस 'सिराते मुस्तक़ीम' (सीधे रास्ते) का पता दिया गया है जिसकी दुआ इस आयत में तालीम की गई है। इरशाद होता है:

صِرَاطَ الَّذِيْنَ اَنْعَمْتَ عَلَيْهِمْ

"यानी रास्ता उन लोगों का जिन पर आपने इनाम फ़रमाया" और वे लोग जिन पर अल्लाह तआला का इनाम हुआ उनकी तफ़सील एक दूसरी आयत में इस तरह आई है:

اَلَّذِيْنَ اَنْعَمَ اللّٰهُ عَلَيْهِمْ مِّنَ النَّبِيّٖنَ وَالصِّدِّيْقِيْنَ وَالشُّهَدَآءِ وَالصّٰلِحِيْنَ.

"यानी वे लोग जिन पर अल्लाह तआला का इनाम हुआ, अर्थात् अम्बिया अलैहिमुस्सलाम और सिद्दीक़ीन और शहीद हज़रात और सालिहीन।"

अल्लाह की बारगाह में मक़बूल बन्दों के ये चार दर्जे हैं, जिनमें सबसे आला दर्जे में अम्बिया अलैहिमुस्सलाम हैं। और सिद्दीक़ीन वे लोग हैं जो अम्बिया अलैहिमुस्सलाम की उम्मत में सबसे ज़्यादा और बड़े रुतबे वाले होते हैं जिनमें कमालाते बातिनी भी होते हैं, उर्फ़ में उनको औलिया कहा जाता है। शहीद वे हैं जिन्होंने दीन की मुहब्बत में अपनी जान तक दे दी। और सालिहीन (नेक लोग) वे हैं जो शरीअत के पूरे ताबे होते हैं वाजिबात में भी, मुस्तहब्बात में भी, जिनको उर्फ़ में नेक दीनदार कहा जाता है।

इस आयत में पहले सकारात्मक और साबित करने के अन्दाज़ से सिराते मुस्तक़ीम को मुतैयन किया गया है कि इन चार तब्क़ों के हज़रात जिस रास्ते पर चलें वह सिराते मुस्तक़ीम (सीधा रास्ता) है। उसके बाद आख़िर की आयत में नकारात्मक और रोक दिये जाने वाली सूरत से इसका निर्धारण किया गया ताकि इस रास्ते महफ़ूज़ रहा जाये। इरशाद है:

غَيْرِ الْمَغْضُوْبِ عَلَيْهِمْ وَلَا الضَّآلِّيْنَ ۝

"यानी न रास्ता उन लोगों का जिन पर आपका ग़ज़ब किया गया, और न उन लोगों का रास्ता जो गुम हो गये।"

"ग़ज़ब किये गये" से वे लोग मुराद हैं जो दीन के अहकाम को जानने पहचानने के बावजूद शरारत या नफ़्सानी इच्छाओं की वजह से उनकी ख़िलाफ़वर्ज़ी (उल्लंघन और अवमानना) करते हैं, या दूसरे लफ़्ज़ों में अहकामे इलाही की तामील में कोताही (यानी तफ़रीत) करते हैं। जैसे आम तौर पर यहूद का हाल था कि दुनिया के घटिया फ़ायदों की ख़ातिर दीन को क़ुरबान करते और अम्बिया अलैहिमुस्सलाम की तौहीन करते थे। और "रास्ते से गुम हो गये" से मुराद वे लोग हैं जो नावाक़फ़ियत और जहालत (अज्ञानता) के सबब दीन के मामले में ग़लत रास्ते पर पड़ गये, और दीन की निर्धारित हद से निकल कर इफ़रात और हद से बढ़ने में मुब्तला हो गये। जैसे आम तौर पर ईसाई थे कि नबी की ताज़ीम (अदब व एहतिराम) में इतने बढ़े कि उन्हीं को ख़ुदा बना लिया। एक

तरफ़ यह ज़ुल्म कि अल्लाह के नबियों की बात न मानें, उन्हें क़त्ल तक करने से गुरेज़ न करें, और दूसरी तरफ़ यह ज़्यादती कि उनको ख़ुदा बना लें।

आयत के मतलब का हासिल यह हुआ कि हम वह रास्ता नहीं चाहते जो नफ़्सानी इच्छाओं के ताबे बुरे अमल करने वाले और दीन में तफ़रीत (कोताही) करने वालों का है, और न वह रास्ता चाहते हैं जो जाहिल गुमराह और दीन में हद से आगे बढ़ने (इफ़रात करने) वालों का है, बल्कि उनके दरमियान का सीधा रास्ता चाहते हैं जिसमें न इफ़रात है न तफ़रीत, और जो मनमानी और नफ़्सानी इच्छाओं की पैरवी से तथा शुब्हात और बुरे अक़ीदों से पाक है।

सूरः फ़ातिहा की सातों आयतों की तफ़सीर ख़त्म हो गई। इस पूरी सूरत का ख़ुलासा और हासिले मतलब यह दुआ है कि या अल्लाह! हमें सिराते मुस्तक़ीम (सीधे और सही रास्ते) की हिदायत अता फ़रमा, और चूँकि दुनिया में सिराते मुस्तक़ीम का पहचानना ही सबसे बड़ा इल्म और बड़ी कामयाबी है और इसी की पहचान में ग़लती होने से दुनिया की क़ौमें तबाह होती हैं, वरना ख़ुदा तलबी और उसके लिये मेहनत व कोशिशों की तो बहुत से काफ़िरों में भी कोई कमी नहीं, इसी लिये क़ुरआने करीम ने सिराते मुस्तक़ीम को पूरी वज़ाहत के साथ पसन्दीदा और नापसन्दीदा (सकारात्मक और नकारात्मक) दोनों पहलुओं से वाज़ेह फ़रमाया है।

सिराते मुस्तक़ीम अल्लाह की किताब और अल्लाह वालों दोनों के मजमूए से मिलता है

यहाँ एक बात क़ाबिले ग़ौर है और इसमें ग़ौर करने से एक बड़े इल्म का दरवाज़ा खुलता है। वह यह कि सिराते मुस्तक़ीम (सीधे रास्ते) के मुतैयन करने के लिये बज़ाहिर साफ़ बात यह थी कि सिराते रसूल या सिराते क़ुरआन (रसूल का रास्ता या क़ुरआन का रास्ता) फ़रमा दिया जाता जो मुख़्तसर भी था और स्पष्ट भी, क्योंकि पूरा क़ुरआन दर हक़ीक़त सिराते मुस्तक़ीम की तशरीह है और पूरी तालीमाते रसूल उसी की तफ़सील। लेकिन क़ुरआने करीम की इस मुख़्तसर सूरत में इख़्तिसार और वज़ाहत के इस पहलू को छोड़कर सिराते मुस्तक़ीम के निर्धारण के लिये अल्लाह तआला ने मुस्तक़िल दो आयतों में सुबूत और नफ़ी दोनों पहलुओं से सिराते मुस्तक़ीम को इस तरह मुतैयन फ़रमाया कि अगर सीधा रास्ता चाहते हो तो इन लोगों को तलाश करो और इनके तरीक़े को इख़्तियार करो। क़ुरआने करीम ने इस जगह न यह फ़रमाया कि क़ुरआन का रास्ता इख़्तियार करो, क्योंकि महज़ किताब इनसानी तरबियत के लिये काफ़ी नहीं। और न यह फ़रमाया कि रसूल का रास्ता इख़्तियार करो, क्योंकि रसूले करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की बक़ा इस दुनिया में हमेशा के लिये नहीं और आप सल्ल. के बाद कोई दूसरा रसूल और नबी नहीं, इसलिये सिराते मुस्तक़ीम जिन लोगों के ज़रिये हासिल हो सकता है उनमें नबियों के अलावा ऐसे हज़रात भी शामिल कर दिये गये जो क़ियामत तक हमेशा मौजूद रहेंगे। जैसे सिद्दीक़ीन, शहीद हज़रात और सालिहीन (नेक लोग)।

ख़ुलासा यह है कि सीधा रास्ता मालूम करने के लिये हक़ तआला ने कुछ बन्दों और इनसानों का

पता दिया, किसी किताब का हवाला नहीं दिया। एक हदीस में है कि जब रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम को ख़बर दी कि पिछली उम्मतों की तरह मेरी उम्मत भी सत्तर फ़िर्क़ों में बंट जायेगी और सिर्फ़ एक जमाअत उनमें हक़ पर होगी। तो सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम ने मालूम किया कि वह कौनसी जमाअत है? इस पर भी हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने जो जवाब दिया है उसमें भी कुछ अल्लाह वालों ही का पता दिया गया है। फ़रमाया:

ما انا عليه و اصحابی

यानी हक़ पर वह जमाअत होगी जो मेरे और मेरे सहाबा के तर्ज़ (रास्ते और तरीक़े) पर हो।

इस ख़ास तर्ज़ (तरीक़े और रास्ते) में शायद इसकी तरफ़ इशारा हो कि इनसान की तालीम व तरबियत महज़ किताबों और रिवायतों से नहीं हो सकती, बल्कि माहिर अफ़राद की सोहबत और उनसे सीखकर हासिल होती है। यानी हक़ीक़त में इनसान का मुअ़ल्लिम और मुरब्बी (सिखाने और तरबियत करने वाला) इनसान ही हो सकता है, सिर्फ़ किताब मुअ़ल्लिम और मुरब्बी नहीं हो सकती बक़ौल अकबर इलाहाबादी मरहूम के:

कोर्स तो लफ़्ज़ ही सिखाते हैं आदमी, आदमी बनाते हैं

और यह एक ऐसी हक़ीक़त है कि जो दुनिया के तमाम कारोबार में खुली आँखों दिखाई देती है, कि महज़ किताबी तालीम से न कोई कपड़ा सीना सीख सकता है न खाना पकाना, न डॉक्टरी की किताब पढ़कर कोई डॉक्टर बन सकता है, न इन्जीनियरी की किताबों के महज़ अध्ययन से कोई इन्जीनियर बनता है। इसी तरह क़ुरआने करीम व हदीस का सिर्फ़ मुताला इनसान की तालीम और अख़्लाक़ी तरबियत के लिये हरगिज़ काफ़ी नहीं हो सकता, जब तक उसको किसी मुहक़्क़िक़ माहिर से बाक़ायदा हासिल न किया जाये। क़ुरआन व हदीस के मामले में बहुत से लिखे पढ़े आदमी इस मुग़ालते (धोखे और ग़लती) में मुब्तला हैं कि महज़ तर्जुमा या तफ़सीर देखकर वे क़ुरआन के माहिर हो सकते हैं, यह बिल्कुल फ़ितरत के ख़िलाफ़ तसव्वुर (सोच) है। अगर महज़ किताब काफ़ी होतीं तो रसूलों के भेजने की ज़रूरत न थी, किताब के साथ रसूल (पैग़म्बर) को मुअ़ल्लिम (सिखाने वाला) बनाकर भेजना और सिराते मुस्तक़ीम को मुतैयन करने के लिये अपने मक़बूल बन्दों की फ़ेहरिस्त देना इसकी दलील है कि महज़ किताब का मुताला तालीम व तरबियत के लिये काफ़ी नहीं, बल्कि किसी माहिर से सीखने की ज़रूरत है।

मालूम हुआ कि इनसान की बेहतरी और कामयाबी के लिये दो चीज़ें ज़रूरी हैं- एक किताबुल्लाह जिसमें इनसानी ज़िन्दगी के हर शोबे (क्षेत्र) से मुताल्लिक़ अहकाम मौजूद हैं। दूसरे अल्लाह के ख़ास बन्दे, यानी अल्लाह वाले उनसे लाभ उठाने की सूरत यह है कि किताबुल्लाह के परिचित उसूल पर अल्लाह वालों को परखा जाये, जो इस मेयार पर न उतरें उनको अल्लाह वाले ही न समझा जाये और जब अल्लाह वाले सही मायने में हासिल हो जायें तो उनसे किताबुल्लाह का मफ़्हूम (मतलब व मायने) सीखने और अमल करने का काम लिया जाये।

सामुदायिक झगड़ों का बड़ा सबब

सामुदायिक और जमाअ़ती झगड़ों और मतभेदों का एक बड़ा सबब यही है कि कुछ लोगों ने सिर्फ़ किताबुल्लाह को ले लिया, अल्लाह वालों से नज़र फेर ली, उनकी तफ़सीर व तालीम को कोई हैसियत न दी, और कुछ लोगों ने सिर्फ़ अल्लाह वालों (शख़्सियतों) को मेयारे हक़ समझ लिया और किताबुल्लाह से आँखें बन्द कर लीं, और इन दोनों तरीक़ों का नतीजा गुमराही है।

सूरः फ़ातिहा के मुताल्लिक़ अहकाम व मसाईल

सूरः फ़ातिहा में पहले अल्लाह तआ़ला की हम्द व सना (तारीफ़ व प्रशंसा) है, फिर सिर्फ़ अल्लाह तआ़ला ही की इबादत का इक़रार और इसका इज़हार है कि हम उसके सिवा किसी को अपना हाजत रवा (ज़रूरत पूरी करने वाला) नहीं समझते। यह गोया वफ़ादारी का अ़हद है जो इनसान अपने रब के साथ करता है। उसके बाद फिर एक अहम दुआ़ है जो तमाम इनसानी मक़सदों व ज़रूरतों पर हावी है और उसके अन्दर बहुत से फ़ायदे और मसाईल आये हैं। उनमें से चन्द अहम मसाईल को लिखा जाता है।

दुआ़ करने का तरीक़ा

1. कलाम करने के इस ख़ास अन्दाज़ के ज़रिये इनसान को यह तालीम दी गई है कि जब अल्लाह तआ़ला से कोई दुआ़ व दरख़्वास्त करना चाहो तो उसका तरीक़ा यह है कि पहले उसकी हम्द व सना (तारीफ़ करने) का फ़र्ज़ अदा करो, फिर इस बात की वफ़ादारी का हलफ़ (अ़हद) करो कि हम उसके सिवा न किसी को लायक़े इबादत समझते हैं और न किसी को सही मायने में मुश्किल का हल करने वाला और ज़रूरत पूरी करने वाला मानते हैं। उसके बाद अपने मतलब की दुआ़ करो। इस तरीक़े से जो दुआ़ माँगी जायेगी उसके क़ुबूल होने की प्रबल और पूरी उम्मीद है। (अहकामे जस्सास)

और दुआ़ में भी ऐसी जामे दुआ़ इख़्तियार करो जिसमें इख़्तिसार के साथ (यानी थोड़े लफ़्ज़ों में) इनसान के तमाम मक़सद दाख़िल हो जायें। जैसे सीधे रास्ते की हिदायत, कि दुनिया व दीन के हर काम में अगर इनसान का रास्ता सीधा हो जाये तो कहीं ठोकर लगने और नुक़सान पहुँचने का ख़तरा नहीं रहता। ग़र्ज़ इस जगह ख़ुद हक़ तआ़ला की तरफ़ से अपनी हम्द व सना (तारीफ़) बयान करने का असल मक़सद इनसान को तालीम देना है।

अल्लाह तआ़ला की तारीफ़ करना इनसान का फ़ितरी फ़र्ज़ है

2. इस सूरत के पहले जुमले में अल्लाह तआ़ला की हम्द (तारीफ़) बयान करने की तालीम व तरग़ीब है, मगर हम्द किसी नेमत या सिफ़त की बिना पर हुआ करती है, यहाँ किसी नेमत या सिफ़त का ज़िक्र नहीं। इसमें इशारा है कि अल्लाह तआ़ला की नेमतें बेशुमार हैं उनका कोई इनसान इह़ाता (पूरी जानकारी) नहीं कर सकता, जैसे कि क़ुरआने करीम का इरशाद है:

وَإِنْ تَعُدُّوا نِعْمَتَ اللَّهِ لَا تُحْصُوهَا (١٤ : ٣٤)

यानी "अगर तुम अल्लाह तआला की नेमतों को शुमार करना चाहो तो नहीं कर सकते।" इनसान अगर सारे आलम को छोड़कर अपने ही वजूद पर नज़र डाल ले तो मालूम होगा कि उसका वजूद खुद एक छोटी सी दुनिया है, जिसमें इस बड़ी दुनिया के सारे नमूने मौजूद हैं। इसका बदन ज़मीन की मिसाल है, उस पर उगने वाले बाल नबातात (पेड़-पौधों और घास वग़ैरह) की मिसाल हैं, उसकी हड्डियाँ पहाड़ों की तशबीह हैं, उसके बदन की रगें जिनमें खून गर्दिश कर रहा है ज़मीन के नीचे बहने वाले चश्मों और नहरों की मिसाल हैं।

इनसान दो चीज़ों से मिलकर बना है एक बदन दूसरे रूह। और यह भी ज़ाहिर है कि क़द्र व क़ीमत के एतिबार से रूह असल, आला और अफ़ज़ल है, बदन महज़ उसके ताबे और अदना दर्जा रखता है। इस अदना और मामूली पार्ट के मुतल्लिक़ इनसानी बदन की तहक़ीक़ करने वाले तबीबों शोधकर्ताओं ने बतलाया है कि इसमें अल्लाह तआला ने तक़रीबन पाँच हज़ार मस्लेहतें और फ़ायदे रखे हैं, उसके बदन में तीन सौ से ज़्यादा जोड़ हैं, हर एक जोड़ को अल्लाह तआला ही की क़ुदरते कामिला ने ऐसा मज़बूत बनाया है कि हर वक़्त की हरकत के बावजूद न घिसता है न उसकी मरम्मत की ज़रूरत होती है। आदतन् इनसान की उम्र साठ सत्तर साल होती है, पूरी उम्र उसके ये नर्म व नाज़ुक हिस्से और उनके सब जोड़ अधिकतर इस तरह हरकत में रहते हैं कि फ़ौलाद (लोहा) भी होता तो घिस जाता। मगर हक़ तआला ने फ़रमाया:

نَحْنُ خَلَقْنٰهُمْ وَشَدَدْنَا أَسْرَهُمْ (٧٦ : ٢٨)

यानी "हमने ही इनसान को पैदा किया और हमने ही उसके जोड़-बन्द मज़बूत किये।"

इस क़ुदरती मज़बूती का नतीजा है कि आम आदत के मुताबिक़ ये नर्म व नाज़ुक जोड़ सत्तर बरस और इससे भी ज़्यादा अरसे तक काम देते हैं। इनसानी अंगों में से सिर्फ़ एक आँख ही को ले लीजिये, इसमें जो अल्लाह तआला की हिक्मते बालिग़ा के मज़ाहिर (प्रतीक और निशानियाँ) मौजूद हैं इनसान को उम्र भर ख़र्च करके भी उनका पूरा इल्म और जानकारी हासिल करना आसान नहीं।

फिर इस आँख के सिर्फ़ एक मर्तबा के अमल को देखकर यह हिसाब लगाईये कि इस एक मिनट के अमल में हक़ तआला की कितनी नेमतें काम कर रही हैं, तो हैरत होती है क्योंकि आँख उठी और उसने किसी चीज़ को देखा। इसमें जिस तरह आँख की अन्दरूनी ताक़तों ने अमल किया है इसी तरह अल्लाह तआला की बाहरी मख़्लूक़ात का इसमें बड़ा हिस्सा है। अगर सूरज की रोशनी न हो तो आँख के अन्दर की रोशनी काम नहीं दे सकती, फिर सूरज के लिये भी एक फ़िज़ा की ज़रूरत होती है, इनसान के देखने और आँख को काम में लाने के लिये ग़िज़ा हवा वग़ैरह की ज़रूरत होती है जिससे मालूम हुआ कि एक मर्तबा नज़र उठकर जो कुछ देखती है उसमें पूरे आलम की ताक़तें काम करती हैं। यह एक मर्तबा का अमल हुआ, फिर आँख दिन में कितनी मर्तबा देखती है और साल में कितनी मर्तबा, उम्र में कितनी मर्तबा, यह ऐसा सिलसिला है जिसके आंकड़े इनसानी ताक़त से बाहर हैं।

इसी तरह कान, ज़बान, हाथ, पाँव के जितने काम हैं उन सब में पूरे आलम (जहान) की ताक़तें शामिल होकर काम पूरा होता है। यह तो वह नेमत है जो हर ज़िन्दा इनसान को मयस्सर है, इसमें

बादशाह व फ़क़ीर, अमीर व ग़रीब का कोई फ़र्क और भेदभाव नहीं। और अल्लाह जल्ल शानुहू की बड़ी-बड़ी नेमतें सब ऐसी ही सब के लिये आम हैं कि हर इनसानी फ़र्द उनसे लाभ उठाता है। आसमान, ज़मीन इन दोनों में और इनके बीच पैदा होने वाली तमाम कायनात चाँद, सूरज, चलने और अपनी जगह जमे रहने वाले सितारे, हवा, फ़िज़ा का नफ़ा हर जानदार को पहुँच रहा है।

इसके बाद अल्लाह तआला की ख़ास नेमतें जो इनसान के अफ़राद पर हिक्मत के तक़ाज़े के तहत कम व ज़्यादा करके अता होती हैं माल और दौलत, इज़्ज़त और रुतबा, राहत और आराम सब इसी क़िस्म में दाख़िल हैं। और अगरचे यह बात बिल्कुल आसानी से समझ में आने वाली है कि आम नेमतें जो तमाम इनसानों में बराबर तौर पर संयुक्त रूप से हैं, जैसे आसमान ज़मीन और इनकी तमाम मख़्लूक़ात, ये नेमतें ख़ास नेमतों माल व दौलत वग़ैरह के एतिबार से ज़्यादा अहम और बड़ी हैं। मगर भोला-भाला इनसान तमाम इनसानी अफ़राद में आम होने की बिना पर कभी इन अज़ीमुश्शान नेमतों की तरफ़ तवज्जोह भी नहीं करता है कि यह कोई नेमत है, सिर्फ़ आस-पास की मामूली चीज़ें खाने पीने, रहने सहने की ख़ुसूसी चीज़ों ही पर उसकी नज़र रुक जाती है।

बहरहाल यह एक सरसरी नमूना है उन नेमतों का जो हर इनसान पर हर वक़्त बरस रही हैं इसका लाज़िमी नतीजा यह होना चाहिये कि इनसान अपनी कोशिश भर इन एहसानात व इनामात करने वाले की हम्द व सना (तारीफ़) करे और करता रहे। फ़ितरत के इसी तक़ाज़े की तालीम व हिदायत के लिये क़ुरआन की सबसे पहली सूरत का सबसे पहला कलिमा 'अल्हम्दु' लाया गया है, और अल्लाह की हम्द व सना को इबादत में बड़ा दर्जा दिया गया है। रसूले करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि जब अल्लाह तआला अपने किसी बन्दे को कोई नेमत अता फ़रमायें और वह उस पर अल्हम्दु लिल्लाह कहे तो ऐसा हो गया कि गोया जो कुछ उसने लिया है उससे अफ़ज़ल चीज़ दे दी। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी, अज़ इब्ने माजा हज़रत अनस रज़ि. की रिवायत से)

एक दूसरी हदीस में है कि "अगर सारी दुनिया की नेमतें किसी एक शख़्स को हासिल हो जायें और वह उस पर अल्हम्दु लिल्लाह कह ले तो यह अल्हम्दु लिल्लाह उन सारी नेमतों से अफ़ज़ल है।" इमाम क़ुर्तुबी रह. ने बाज़ उलेमा से नक़ल किया है कि इसका मतलब यह है कि अल्हम्दु लिल्लाह ज़बान से कहना भी अल्लाह ही की एक नेमत है और यह नेमत सारी दुनिया की नेमतों से अफ़ज़ल है। और सही हदीस में है कि अल्हम्दु लिल्लाह से अमल की तराज़ू का आधा पल्ला भर जाता है और हम्द (तारीफ़) की हक़ीक़त हज़रत शक़ीक़ बिन इब्राहीम रह. ने यह बयान फ़रमाई है कि जब अल्लाह तआला तुम्हें कोई चीज़ अता फ़रमावे तो पहले उसके देने वाले को पहचानो, फिर जो कुछ उसने दिया है उस पर राज़ी हो जाओ, फिर जब तक तुम्हारे जिस्म में उसकी अता की हुई क़ुव्वत व ताक़त मौजूद है उसकी नाफ़रमानी के क़रीब न जाओ। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी रह.)

दूसरा कलिमा "लिल्लाहि" है। इसमें लफ़्ज़ अल्लाह के साथ शुरू में लाम लगा हुआ है, जिसको अरबी भाषा के ग्रामर से 'लामे इख़्तिसास' (ख़ास करने का लाम) कहा जाता है, जो किसी हुक्म या सिफ़त व ख़ूबी की ख़ुसूसियत पर दलालत करता है। इस जगह मायने यह हैं कि सिर्फ़ यही नहीं कि अल्लाह तआला की हम्द व सना (तारीफ़) इनसान का फ़र्ज़ है, बल्कि हक़ीक़त यह है कि हम्द व सना सिर्फ़ उसी की पाक ज़ात के साथ मख़्सूस है, वास्तविक तौर पर उसके सिवा आलम में कोई हम्द व

सना (तारीफ़ व प्रशंसा) का हक़दार नहीं हो सकता, जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, हाँ! इसके साथ यह भी इनाम है कि इनसान को तहज़ीबे अख़्लाक़ सिखाने के लिये उसको यह भी हुक्म दे दिया कि मेरी नेमत व एहसान जिन वास्तों (माध्यमों) से तुम्हारे साथ आये उनका भी शुक्र अदा करो क्योंकि जो शख़्स अपने मोहसिन (एहसान करने वाले) इनसान का शुक्रिया अदा करने का आदी न हो वह ख़ुदा का भी शुक्र अदा नहीं करेगा।

ख़ुद अपनी तारीफ़ किसी इनसान के लिये जायज़ नहीं

3. ख़ुद अपनी हम्द व सना (तारीफ़) का बयान करना किसी मख़्लूक़ के लिये जायज़ नहीं। क़ुरआने करीम में इरशाद है:

فَلَا تُزَكُّوْٓا اَنْفُسَكُمْ هُوَ اَعْلَمُ بِمَنِ اتَّقٰى ۝ (٣٢:٥٣)

"यानी तुम अपनी पाकी और सफ़ाई का दावा न करो, अल्लाह ही जानता है कि कौन तक़्वे वाला है।"

मतलब यह है कि इनसान की तारीफ़ और प्रशंसा का मदार तक़्वे (नेकी और परहेज़गारी) पर है, और इसका हाल अल्लाह तआला ही जानते हैं कि किसका तक़्वा किस दर्जे का है। और हक़ तआला ने जो अपनी हम्द व सना (तारीफ़) ख़ुद बयान फ़रमाई इसकी वजह यह है कि बेचारा इनसान इसकी सलाहियत नहीं रखता कि अल्लाह तआला की बारगाह की हम्द व सना (तारीफ़) कैसे बयान करे, और किसी की तो क्या मजाल है कि अल्लाह तआला के शायाने शान हम्द व सना कर सके रसूले करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया:

لَآ اُحْصِيْ ثَنَاءً عَلَيْكَ

यानी मैं आपकी सना (तारीफ़) जैसा कि उसका हक़ है, नहीं कर सकता।" इसलिये अल्लाह जल्ल शानुहू ने ख़ुद ही हम्द व सना का तरीक़ा इनसान को तालीम फ़रमा दिया।

लफ़्ज़ 'रब' अल्लाह तआला का ख़ास नाम है

अल्लाह के अलावा किसी और को 'रब' कहना जायज़ नहीं

4. लफ़्ज़ 'रब' को ऐसे शख़्स के लिये बोला जाता है जो किसी चीज़ का मालिक हो और उसकी तरबियत व बेहतरी की तदबीर और पूरी निगरानी भी करता हो, और यह ज़ाहिर है कि सारी कायनात व मख़्लूक़ात का ऐसा रब सिवाय अल्लाह तआला के और कोई नहीं हो सकता। इसलिये यह लफ़्ज़ अपने आम बोले जाने के वक़्त हक़ तआला के साथ ख़ास है, ग़ैरुल्लाह को रब कहना जायज़ नहीं। सही मुस्लिम की हदीस में इसकी मनाही आई है कि कोई ग़ुलाम या नौकर अपने आक़ा को रब कहे, अलबत्ता किसी ख़ास चीज़ की तरफ़ इज़ाफ़त (निस्बत) करके इनसान वग़ैरह के लिये भी यह लफ़्ज़ बोला जा सकता है। जैसे 'रब्बुल-माल' (माल वाला), 'रब्बुद्दार' (घर का मालिक) वग़ैरह। (क़ुर्तुबी)

इस्तिआनत के मायने की वज़ाहत

और मसला-ए-तवस्सुल की तहक़ीक़

5. "इय्या-क नअ़्बुदु व इय्या-क नस्तअ़ीन" के मायने मुफ़स्सिरे क़ुरआन हज़रत अब्दुल्लाह बिन अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने यह बयान फ़रमाये हैं कि हम तेरी ही इबादत करते हैं, तेरे सिवा किसी की इबादत नहीं करते, और तुझसे ही मदद माँगते हैं, तेरे सिवा किसी से मदद नहीं माँगते।

(इब्ने जरीर, इब्ने अबी हातिम)

बाज़ पहले उलेमा रह. ने फ़रमाया कि सूरः फ़ातिहा पूरे क़ुरआन का राज़ (ख़ुलासा) है, और आयत "इय्या-क नअ़्बुदु व इय्या-क नस्तअ़ीन" पूरी सूरः फ़ातिहा का राज़ (ख़ुलासा) है। क्योंकि इसके पहले जुमले में शिर्क से बरी होने का ऐलान है, और दूसरे जुमले में अपनी ताक़त व क़ुदरत से बरी होने का इज़हार है कि आ़जिज़ बन्दा बग़ैर अल्लाह की मदद के कुछ नहीं कर सकता, जिसका नतीजा अपने सब कामों को अल्लाह तआ़ला के सुपुर्द करना है। जिसकी हिदायत क़ुरआने करीम में जगह-जगह आई है:

فَاعْبُدْهُ وَتَوَكَّلْ عَلَيْهِ (سورة هود: ١٢٣) قُلْ هُوَ الرَّحْمٰنُ اٰمَنَّا بِهٖ وَعَلَيْهِ تَوَكَّلْنَا (سورة ملك: ٢٩)

رَبُّ الْمَشْرِقِ وَالْمَغْرِبِ لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ فَاتَّخِذْهُ وَكِيْلًا. (سورة مزمل: ٩)

इन तमाम आयतों का हासिल यही है कि मोमिन अपने हर अ़मल में एतिमाद और भरोसा न अपनी क़ाबलियत पर करे न किसी दूसरे की मदद पर बल्कि पूरी तरह भरोसा सिर्फ़ अल्लाह तआ़ला ही पर होना चाहिये, वही सब का काम बनाने वाला है।

अल्लाह के अ़लावा किसी की इबादत जायज़ नहीं

इससे दो मसले उसूले अ़क़ायद के साबित हुए। पहला यह कि अल्लाह के सिवा किसी की इबादत जायज़ नहीं, उसकी इबादत में किसी को शरीक करना हराम और नाक़ाबिले माफ़ी जुर्म है।

इबादत के मायने ऊपर मालूम हो चुके हैं कि किसी ज़ात की इन्तिहाई बड़ाई व मुहब्बत की बिना पर उसके सामने अपनी इन्तिहाई आ़जिज़ी और पस्ती का इज़हार है। अल्लाह तआ़ला के सिवा किसी मख़्लूक़ के साथ ऐसा मामला किया जाये तो यही शिर्क कहलाता है। इससे मालूम हुआ कि शिर्क सिर्फ़ इसी को नहीं कहते कि बुत परस्तों की तरह किसी पत्थर की मूर्ति वग़ैरह को ख़ुदाई इख़्तियारात का मालिक समझे, बल्कि किसी की बड़ाई, मुहब्बत, इताअ़त को वह दर्जा देना जो अल्लाह तआ़ला ही का हक़ है यह भी खुले शिर्क में दाख़िल है। क़ुरआन मजीद में यहूदियों व ईसाईयों के शिर्क का बयान करते हुए इरशाद फ़रमाया है:

اِتَّخَذُوْٓا اَحْبَارَهُمْ وَرُهْبَانَهُمْ اَرْبَابًا مِّنْ دُوْنِ اللّٰهِ. (سورة الانعام: ٣١)

"यानी उन लोगों ने अपने दीनी आ़लिमों को अपना रब बना लिया है।"

हज़रत अ़दी बिन हातिम रज़ियल्लाहु अ़न्हु जो मुसलमान होने से पहले ईसाई थे उन्होंने इस आयत के बारे में रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से अ़र्ज़ किया कि हम तो अपने उलेमा की

इबादत नहीं करते थे, फिर क़ुरआने करीम में उनको माबूद बनाने का इल्ज़ाम हम पर कैसे लगाया गया? आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया क्या ऐसा नहीं है कि तुम्हारे उलेमा बहुत सी ऐसी चीज़ों को हराम क़रार देते हैं जिनको अल्लाह ने हलाल किया है, और तुम अपने उलेमा के कहने पर उनको हराम ही समझते हो? और बहुत सी ऐसी चीज़ें हैं जिनको अल्लाह तआला ने हराम किया है तुम्हारे उलेमा उनको हलाल कर देते हैं, तो तुम उनके कहने की पैरवी करके हलाल कर लेते हो? अदी बिन हातिम रज़ियल्लाहु अन्हु ने अर्ज़ किया कि बेशक ऐसा तो है। इस पर आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि यही तो उनकी इबादत है।

इससे मालूम हुआ कि किसी चीज़ के हलाल या हराम क़रार देने का हक़ सिर्फ़ हक़ तआला का है जो शख़्स इसमें किसी दूसरे को शरीक क़रार दे और अल्लाह तआला के अहकाम हराम व हलाल मालूम होने के बावजूद उनके ख़िलाफ़ किसी दूसरे के क़ौल की पैरवी करे तो वह गोया उसकी इबादत करता है और शिर्क में मुब्तला है।

आम मुसलमान जो क़ुरआन व सुन्नत को ख़ुद समझने की और उनसे शरीअत के अहकाम निकालने की सलाहियत नहीं रखते इसलिये किसी इमाम, मुज्तहिद या आलिम व मुफ़्ती के क़ौल पर भरोसा करके अमल करते हैं, उसका इस आयत से कोई ताल्लुक़ नहीं, क्योंकि वह दर हक़ीक़त क़ुरआन व सुन्नत ही पर अमल है और अहकामे ख़ुदावन्दी की इताअत है। और ख़ुद क़ुरआने करीम ने इसकी हिदायत फ़रमाई है:

فَسْئَلُوْٓا اَهْلَ الذِّكْرِ اِنْ كُنْتُمْ لَا تَعْلَمُوْنَ ۝ (١٦:٤٣)

"यानी अगर तुम ख़ुद अहकामे इलाही को नहीं जानते तो जानने वालों से पूछ लो।"

और जिस तरह हलाल व हराम के अहकाम में अल्लाह तआला के सिवा किसी को शरीक करना शिर्क है इसी तरह किसी के नाम की नज़्र (मन्नत) मानना भी शिर्क में दाख़िल है। अल्लाह तआला के सिवा किसी दूसरे को ज़रूरत व इच्छा पूरी करने वाला, मुश्किल हल करने वाला समझकर उससे दुआ माँगना भी शिर्क है, क्योंकि हदीस में दुआ को इबादत फ़रमाया गया है।

इसी तरह ऐसे आमाल व काम जो शिर्क की अलामत समझे जाते हैं उनका करना भी शिर्क के हुक्म में है, जैसे हज़रत अदी बिन हातिम रज़ियल्लाहु अन्हु ने फ़रमाया कि (मुसलमान होने के बाद) मैं नबी करीम सल्ल. की ख़िदमत में हाज़िर हुआ तो मेरे गले में सलीब पड़ी हुई थी, आपने मुझसे फ़रमाया कि इस बुत को अपने गले से निकाल दो।

अगरचे उस वक़्त हज़रत अदी बिन हातिम रज़ियल्लाहु अन्हु का अक़ीदा सलीब के मुताल्लिक़ वह न था जो ईसाईयों का होता है मगर ज़ाहिरी तौर पर भी शिर्क की पहचान से बचने को ज़रूरी समझकर यह हिदायत की गई। अफ़सोस कि आजकल हज़ारों मुसलमान रेड क्रॉस का सलीबी निशान लगाये फिरते हैं और कोई परवाह नहीं करते, कि बिना वजह एक मुश्रिकाना जुर्म के करने वाले हो रहे हैं। इसी तरह किसी को रुकूअ, सज्दा करना या बैतुल्लाह के सिवा किसी दूसरी चीज़ के गिर्द तवाफ़ करना ये सब शिर्क की निशानियाँ हैं, जिनसे बचना "इय्या-क नअ़बुदु" के इक़रार या वफ़ादारी के हलफ़ का एक हिस्सा है।

दूसरा मसला यह है कि इस्तिआनत और इस्तिग़ासा (यानी मदद तलब करना और फ़रियाद तलब करना) सिर्फ़ अल्लाह तआला ही से करना है, किसी दूसरे से जायज़ नहीं।

'इस्तिआनत' व 'तवस्सुल' के मसले की तहक़ीक़ और अहकाम की तफ़सील

यह दूसरा मसला किसी से मदद माँगने का ज़रा वज़ाहत चाहता है, क्योंकि एक मदद तो माद्दी असबाब (ज़ाहिरी सामान) के मातहत हर इनसान दूसरे इनसान से लेता है, इसके बग़ैर इस दुनिया का निज़ाम चल ही नहीं सकता। उद्योगपति अपने उद्योग के ज़रिये सारी मख़्लूक़ की ख़िदमत करता है, मज़दूर, मिस्त्री, बढ़ई, लुहार सब मख़्लूक़ की मदद में लगे हुए हैं और हर शख़्स इनसे मदद लेने व माँगने पर मजबूर है। ज़ाहिर है कि यह किसी दीन व शरीअत में मना और वर्जित नहीं। यह उस इस्तिआनत (मदद तलब करने) में दाख़िल नहीं जो अल्लाह तआला के साथ मख़्सूस है। इसी तरह ग़ैर-माद्दी असबाब के ज़रिये किसी नबी या वली से दुआ करने की मदद माँगना या उनका वसीला देकर डायरेक्ट अल्लाह तआला से दुआ माँगना हदीस की रिवायतों और क़ुरआन के इशारात से इसका भी जवाज़ (जायज़ और सही होना) साबित है, यह भी उस इस्तिआनत में दाख़िल नहीं जो सिर्फ़ अल्लाह तआला के लिये मख़्सूस और ग़ैरुल्लाह के लिये हराम व शिर्क है।

अब वह मख़्सूस इस्तिआनत व इमदाद जो अल्लाह तआला के साथ ख़ास है और ग़ैरुल्लाह के लिये शिर्क है, कौनसी है? इसकी दो क़िस्में हैं- एक तो यह कि अल्लाह तआला के सिवा किसी फ़रिश्ते या पैग़म्बर या वली या किसी और इनसान को ख़ुदा तआला की तरह क़ादिरे मुतलक़ और मुख़्तारे मुतलक़ (यानी उसकी ज़ात से उसको बा-इख़्तियार) समझकर उससे अपनी हाजत माँगे, यह तो ऐसा खुला हुआ कुफ़्र है कि आम बुत परस्त मुश्रिक लोग भी इसको कुफ़्र समझते हैं। अपने बुतों, देवताओं को बिल्कुल ख़ुदा तआला की तरह क़ादिरे मुतलक़ और मुख़्तारे मुतलक़ (हर तरह का पूरा इख़्तियार रखने वाला) ये काफ़िर लोग भी नहीं मानते।

दूसरी क़िस्म वह है जिसको काफ़िर लोग इख़्तियार करते हैं, और क़ुरआन और इस्लाम इसको बातिल व शिर्क क़रार देता है "इय्या-क नस्तईन" में यही मुराद है, कि ऐसी इस्तिआनत व इमदाद हम अल्लाह के सिवा किसी से नहीं चाहते, वह यह है कि अल्लाह तआला की किसी मख़्लूक़ फ़रिश्ते या पैग़म्बर या वली या किसी देवता के मुताल्लिक़ यह अक़ीदा रखना कि अगरचे क़ादिरे मुतलक़ अल्लाह तआला ही है और कामिल इख़्तियारात उसी के हैं, लेकिन उसने अपनी क़ुदरत व इख़्तियार का कुछ हिस्सा फ़ुलाँ शख़्स को सौंप दिया है और उस दायरे में वह ख़ुद मुख़्तार है, यही वह इस्तिआनत व इस्तिमदाद (मदद तलब करना) है जो मोमिन व काफ़िर में फ़र्क़ और इस्लाम व कुफ़्र में इम्तियाज़ (फ़र्क़) करती है। क़ुरआन इसको शिर्क व हराम क़रार देता है, बुत परस्त मुश्रिक लोग इसके क़ायल और इस पर आमिल (कारबन्द) हैं।

इस मामले में धोखा यहाँ से लगता है कि अल्लाह तआला अपने बहुत से फ़रिश्तों के हाथों दुनियावी व्यवस्था के बहुत से काम जारी करते हैं, देखने वाला इस मुग़ालते (धोखे) में पड़ सकता है

कि उस फ़रिश्ते को अल्लाह तआला ने यह इख़्तियार सुपुर्द कर दिया है, या अम्बिया अलैहिमुस्सलाम के ज़रिये बहुत से ऐसे काम वजूद में आते हैं जो आम इनसानों की क़ुदरत से बाहर हैं, जिनको मोजिज़े कहा जाता है। इसी तरह औलिया-अल्लाह के ज़रिये भी ऐसे बहुत से काम वजूद में आते हैं जिनको करामत कहा जाता है, यहाँ सरसरी नज़र वालों को यह मुग़ालता (धोखा) लग जाता है कि अगर अल्लाह तआला इन कामों की क़ुदरत व इख़्तियार इनको सुपुर्द न करता तो इनके हाथ से वे कैसे वजूद में आते? इससे वे उन अम्बिया अलैहिमुस्सलाम व औलिया-अल्लाह के एक दर्जे में मुख़्तार होने का अक़ीदा बना लेते हैं, हालाँकि हक़ीक़त यूँ नहीं, बल्कि मोजिज़े और करामतें डायरेक्ट हक़ तआला का फ़ेल होता है, सिर्फ़ उसका ज़हूर पैग़म्बर या वली के हाथों पर उनका रुतबा साबित करने के लिये किया जाता है। पैग़म्बर और वली को उसके वजूद में लाने का कोई इख़्तियार नहीं होता क़ुरआन मजीद की बेशुमार आयतें इस पर शाहिद (गवाह और सुबूत) हैं, जैसे यह आयतः

وَمَا رَمَيْتَ إِذْ رَمَيْتَ وَلَٰكِنَّ اللَّهَ رَمَىٰ. (٨:١٧)

इसमें रसूले करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के उस मोजिज़े का ज़िक्र है जिसमें आपने दुश्मन के लश्कर की तरफ़ एक मुट्ठी कंकरियों की फेंकी और अल्लाह तआला की क़ुदरत से वो सारे लश्कर की आँखों में जा लगीं। इसके मुताल्लिक़ इरशाद है कि यह आपने नहीं फेंकी बल्कि अल्लाह तआला ने फेंकी थी। जिससे मालूम हुआ कि मोजिज़ा जो नबी के वास्ते से ज़ाहिर होता और वजूद में आता है वह दर हक़ीक़त अल्लाह तआला का फ़ेल (काम) होता है।

इसी तरह हज़रत नूह अलैहिस्सलाम को जब उनकी क़ौम ने कहा कि अगर आप सच्चे हैं तो जिस अज़ाब से डरा रहे हैं वह बुला लीजिये, तो उन्होंने फ़रमायाः

إِنَّمَا يَأْتِيكُم بِهِ اللَّهُ إِن شَاءَ. (هود:٣٣)

"यानी मोजिज़े के तौर पर आसमानी अज़ाब नाज़िल करना मेरे क़ब्ज़े में नहीं, अल्लाह तआला अगर चाहेगा तो यह अज़ाब आ जायेगा, फिर तुम उससे भाग न सकोगे।"

सूरः इब्राहीम में अम्बिया व रसूलों (अलैहिमुस्सलाम) की एक जमाअत का यह क़ौल ज़िक्र फ़रमाया गया हैः

وَمَا كَانَ لَنَا أَن نَّأْتِيَكُم بِسُلْطَانٍ إِلَّا بِإِذْنِ اللَّهِ. (١٤:١١)

यानी "किसी मोजिज़े का सादिर (वजूद में लाना और ज़ाहिर) करना हमारे हाथ में नहीं, अल्लाह तआला के हुक्म व मर्ज़ी के बग़ैर कुछ नहीं हो सकता।"

इसी वजह से कोई पैग़म्बर या कोई वली जब चाहे जो चाहे मोजिज़ा या करामत दिखा दे यह क़तई किसी के बस में नहीं। रसूले करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम और दूसरे अम्बिया से बहुत से ख़ास मोजिज़ों का मुतालबा मुश्रिकों ने किया, मगर जिसको अल्लाह तआला ने चाहा ज़ाहिर कर दिया जिसको न चाहा नहीं हुआ। पूरा क़ुरआन इसकी शहादतों (मिसालों और सुबूतों) से भरा हुआ है।

एक महसूस मिसाल से इसको यूँ समझ लीजिये कि आप जिस कमरे में बैठे हैं उसमें बिजली की रोशनी बल्ब से और हवा बिजली के पंखे से आपको पहुँच रही है, मगर यह बल्ब और पंखा उस रोशनी और हवा पहुँचाने में क़तई ख़ुद मुख़्तार नहीं, बल्कि हर आन उस जोड़ (कनेक्शन) के मोहताज

हैं जो तार के ज़रिये पॉवर हाऊस के साथ उनको हासिल है, एक सैकेण्ड के लिये यह जोड़ टूट जाये तो न बल्ब आपको रोशनी दे सकता है न पंखा हवा दे सकता है, क्योंकि दर हक़ीक़त वह अमल बल्ब और पंखे का है ही नहीं, बल्कि बिजली की रौ का है, जो पॉवर हाऊस से यहाँ पहुँच रही है। अम्बिया अलैहिमुस्सलाम, औलिया-अल्लाह और सब फ़रिश्ते हर अमल में हर काम में हर आन हक़ तआला के मोहताज हैं, उसी की क़ुदरत व चाहत से सब काम वजूद में आते हैं, अगरचे ज़हूर उसका बल्ब और पंखे की तरह अम्बिया व औलिया के हाथों पर होता है।

इस मिसाल से यह भी स्पष्ट हो गया कि इन चीज़ों के ज़ाहिर होने और वजूद में आने में अगरचे इख़्तियार अम्बिया व औलिया का नहीं मगर उनका पवित्र वजूद उनसे बिल्कुल बेदख़ल भी नहीं, जैसे बल्ब और पंखे के बग़ैर आपको रोशनी और हवा नहीं पहुँच सकती, ये मोजिज़े व करामतें भी अम्बिया व औलिया के बग़ैर नहीं मिलते। अगरचे यह फ़र्क़ ज़रूर है कि पूरी फ़िटिंग और कनेक्शन दुरुस्त होने के बावजूद आपको बग़ैर बल्ब के रोशनी और बग़ैर पंखे के हवा का मिलना आदतन नामुम्किन है और मोजिज़ों व करामतों में हक़ तआला को सब कुछ क़ुदरत है, कि बग़ैर किसी पैग़म्बर व वली के वास्ते के भी उसका ज़हूर फ़रमा दें, मगर अल्लाह तआला की आदत यही है कि उनका ज़हूर औलिया व अम्बिया के वास्ते के बग़ैर नहीं होता, क्योंकि ऐसे ख़िलाफ़े आदत, असाधारण और चमत्कारिक कामों के इज़हार से जो मक़सद है वह इसके बग़ैर पूरा नहीं होता।

इसलिये मालूम हुआ कि अक़ीदा तो यही रखना है कि सब कुछ अल्लाह तआला की क़ुदरत व मर्ज़ी से हो रहा है, इसके साथ अम्बिया व औलिया की बड़ाई व ज़रूरत का भी मानना ज़रूरी है इसके बग़ैर अल्लाह की रज़ा और उसके अहकाम को पूरा करने से मेहरूम रहेगा। जिस तरह कोई शख़्स बल्ब और पंखे की क़द्र न पहचाने और उनको ज़ाया कर दे तो रोशनी और हवा से मेहरूम रहता है।

वसीला, इस्तिआनत और इस्तिमदाद के मसले में लोगों को बहुत ज़्यादा शुब्हा व इश्काल रहता है। उम्मीद है कि इस तशरीह (वज़ाहत व स्पष्टीकरण) से असल हक़ीक़त वाज़ेह हो जायेगी और यह भी मालूम हो जायेगा कि अम्बिया व औलिया को वसीला बनाना न तो पूरी तरह जायज़ है और न पूरी तरह नाजायज़, बल्कि इसमें वह तफ़सील है जो ऊपर ज़िक्र की गई है कि किसी को मुख़्तारे मुतलक़ (पूरे इख़्तियार का मालिक) समझकर वसीला बनाया जाये तो शिर्क व हराम है, और महज़ वास्ता और ज़रिया (माध्यम) समझकर किया जाये तो जायज़ है। इसमें आम तौर पर लोगों में कमी-ज़्यादती (यानी मसले की हद में न रहने का) का अमल नज़र आता है। मैं अल्लाह तआला ही से सही राह और उस पर सख़्ती से जमाव का सवाल करता हूँ क्योंकि हर चीज़ का आग़ाज़ व अन्जाम उसी के हाथ में है।

'सिराते मुस्तक़ीम' की हिदायत दुनिया व दीन में कामयाबी की कुन्जी है

6. असल तफ़सीर में यह बात वज़ाहत से आ गई है कि क़ुरआने करीम ने जिस दुआ को हर

शख़्स के लिये हर काम के लिये हर हाल में चुना और पसन्द फ़रमाया है वह 'सिराते मुस्तक़ीम' (सीधा रास्ते) की हिदायत की दुआ है जिस तरह आख़िरत की कामयाबी उस सिराते मुस्तक़ीम पर मौक़ूफ़ (टिकी) है जो इनसान को जन्नत की तरफ़ ले जाये, इसी तरह दुनिया के सारे कामों में ग़ौर करो तो कामयाबी का मदार सिराते मुस्तक़ीम ही है। जिस काम में वे अस्बाब और ज़रिये इख़्तियार किये गये जिसके नतीजे में मक़सद का हासिल होना आदतन् लाज़िमी है तो कामयाबी आदतन् लाज़िमी होती है जहाँ कहीं इनसान अपने मक़सद में कामयाब नहीं होता तो अगर वह ग़ौर करे तो मालूम हो जायेगा कि काम के किसी मर्हले में उसने ग़लती की है, सही रास्ता हाथ से छूट गया था इसलिये नाकामयाबी हुई।

इसका हासिल यह है कि सिराते मुस्तक़ीम की हिदायत सिर्फ़ आख़िरत और दीन के कामों के साथ मख़्सूस नहीं, दुनिया के सब कामों की बेहतरी और कामयाबी भी इसी पर मौक़ूफ़ (निर्भर और टिकी हुई) है, इसलिये यह दुआ ऐसी है कि मोमिनों को हर वक़्त दिल से लगाकर रखने के क़ाबिल है, शर्त यह है कि दिल के ध्यान और नीयत के साथ की जाये, सिर्फ़ अलफ़ाज़ का पढ़ लेना न हो और अल्लाह ही है तौफ़ीक़ देने वाला और वही है मददगार।

अल्लाह तआला के फ़ज़्ल व करम से सूरः फ़ातिहा की तफ़सीर पूरी हुई।
तमाम तारीफ़ें हर हाल में उसी की ज़ात के शायाने शान हैं।

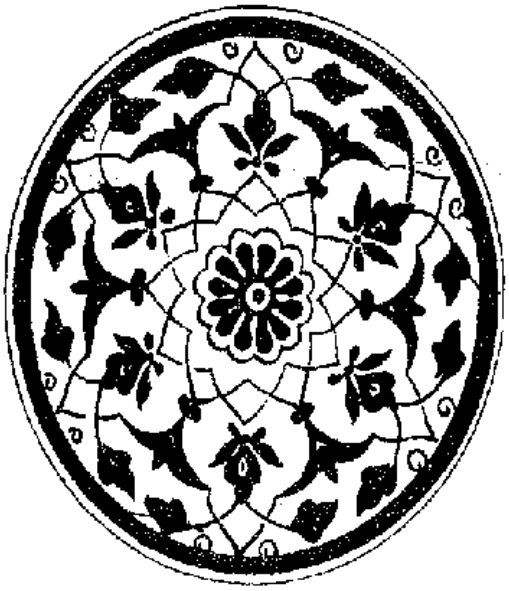

* सूरः ब-क़रह *

यह सूरत मदनी है। इसमें 286 आयतें
और 40 रुकूअ़ है।

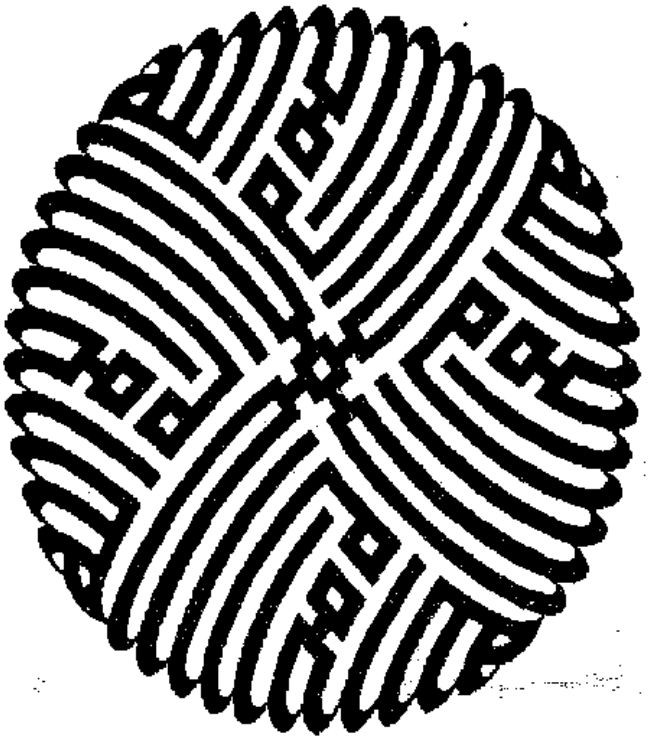

Derived from the works of Emir Berin [12]
" Lā ilāha illā Allāh "

बिल्कुल उम्मी-ए-महज़ (बिना पढ़े-लिखे) रहे, कि अपना नाम तक भी न लिख सकते थे। अरब वालों का मख़्सूस फ़न शे'र व तक़रीर था जिसके लिये ख़ास-ख़ास जलसे किये जाते और मुशा'यरे आयोजित होते और उत्तमें हर शख़्स मुक़ाबले और आगे बढ़ने की कोशिश करता था, आप सल्ल. को हक़ तआला ने ऐसी फ़ितरत अता फ़रमाई थी कि इन चीज़ों में भी दिलचस्पी न ली, न कभी कोई शे'र या क़सीदा लिखा न किसी ऐसी मज्लिस में शरीक हुए। हाँ उम्मी-ए-महज़ (बिना पढ़े-लिखे) होने के साथ बचपन ही से आप सल्ल. की शराफ़ते नफ़्स, बुलन्द अख़्लाक़, समझ व शऊर के ग़ैर-मामूली (असाधारण) आसार, ईमानदारी व सच्चाई के अ'ला तरीन शाहकार आपकी पाक ज़ात में हर वक़्त देखे जाते थे, जिसका नतीजा यह था कि अरब के बड़े-बड़े मग़रूर और घमंडी सरदार आपकी ताज़ीम (अदब व सम्मान) करते थे और सारे मक्का में आपको अमीन के लक़ब से पुकारा जाता था।

यह उम्मी-ए-महज़ (बिल्कुल बिना पढ़े-लिखे) चालीस साल तक मक्का में अपनी बिरादरी के सामने रहते हैं, किसी दूसरे मुल्क का सफ़र भी नहीं करते, जिससे यह ख़्याल पैदा हो सके कि वहाँ जाकर उलूम हासिल किये होंगे, सिर्फ़ मुल्के शाम के दो तिजारती सफ़र हुए वे भी गिने-चुने दिनों के लिये जिसमें इसकी कोई संभावना नहीं।

इस उम्मी-ए-महज़ (पूरी तरह बिना पढ़े-लिखे) शख़्स की पवित्र ज़िन्दगी के चालीस साल मक्का में अपनी बिरादरी में इस तरह गुज़रे कि न कभी किसी किताब या क़लम को हाथ लगाया, न किसी पाठशाला में गये, न किसी मज्लिस में कोई नज़्म व क़सीदा ही पढ़ा। लेकिन चालीस साल के बाद उनकी ज़बाने मुबारक पर वह कलाम आने लगा जिसका नाम क़ुरआन है, जो अपनी लफ़्ज़ी बलाग़त ख़ूबियों के लिहाज़ से और मानवी उलूम व फ़ुनून के लिहाज़ से अक़्लों को हैरान कर देने वाला कलाम है। अगर सिर्फ़ इतना ही होता तो भी इसके मोजिज़ा होने में किसी इन्साफ़ पसन्द को क्या शुब्हा रह सकता है मगर यहाँ यही नहीं बल्कि उसने सारी दुनिया को चुनौती दी, चैलेंज दिया कि किसी को इसके अल्लाह का कलाम होने में शुब्हा हो तो इसके जैसा बना लाये।

अब एक तरफ़ क़ुरआन की यह चुनौती और चैलेंज और दूसरी तरफ़ सारी दुनिया की मुख़ालिफ़ ताक़तें जो इस्लाम और पैग़म्बरे इस्लाम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को शिकस्त देने के लिये अपने माल, जान, औलाद, आबरू सब गंवाने को तैयार हैं, मगर इतना काम करने के लिये कोई जुर्रत नहीं करता कि क़ुरआन की एक छोटी सी सूरत की मिसाल बना लाये। फ़र्ज़ कर लीजिये कि यह किताब बेमिसाल व बेनज़ीर भी न होती तब भी एक उम्मी-ए-महज़ (बिल्कुल बिना पढ़े-लिखे) की ज़बान से इसका ज़हूर क़ुरआन के दूसरों को आजिज़ कर देने वाला और इसके मोजिज़ा होने की वुजूहात की तफ़सील में जाये बग़ैर भी क़ुरआन के मोजिज़ा होने के लिये कम नहीं, जिसको हर आलिम व जाहिल समझ सकता है।

क़ुरआन के मोजिज़ा होने की दूसरी वजह

अब क़ुरआन के मोजिज़ा होने की दूसरी वजह देखिये- यह आपको मालूम है कि क़ुरआन और उसके अहकाम सारी दुनिया के लिये आये लेकिन इसके डायरेक्ट और पहले मुख़ातब अरब के लोग थे, जिनको और कोई इल्म व फ़न आता था या नहीं मगर अरबी भाषा में तक़रीर व तहरीर की

तो खुलासा यह हुआ कि क़िताल (जंग व क़त्ल करने) में शुरूआत करना तो इन महीनों में हमेशा के लिये हराम है मगर जब काफ़िर लोग इन महीनों में हमलावर हों तो रक्षात्मक लड़ाई और उनको क़त्ल करने की मुसलमानों को भी इजाज़त है जैसा कि इमाम जस्सास रहमतुल्लाहि अलैहि ने हज़रत जाबिर बिन अब्दुल्लाह रज़ियल्लाहु अन्हु की रिवायत से नक़ल किया है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम किसी 'सम्मानित महीने' में उस वक़्त तक क़िताल न करते थे जब तक क़िताल की शुरूआत काफ़िरों की तरफ़ से न हो जाये।

दीन इस्लाम से फिर जाने का अन्जाम

ज़िक्र हुई आयतः

يَسْئَلُوْنَكَ عَنِ الشَّهْرِ الْحَرَامِ

(यानी आयत नम्बर 217) के आख़िर में मुसलमान होने के बाद कुफ़्र व बेदीनी इख़्तियार करने का यह हुक्म ज़िक्र फ़रमाया है कि:

حَبِطَتْ اَعْمَالُهُمْ فِى الدُّنْيَا وَالْاٰخِرَةِ

यानी "उन लोगों के आमाल दुनिया व आख़िरत में सब ग़ारत हो जायेंगे।"

मसलाः- दुनिया में आमाल का ज़ाया (बरबाद) होना यह है कि उसकी बीवी निकाह से निकल जाती है, अगर उसका कोई मूरिस मुसलमान मरे तो उस शख़्स को मीरास का हिस्सा नहीं मिलता, इस्लाम की हालत में नमाज़, रोज़ा जो कुछ किया था सब ख़त्म और बेकार हो जाता है। मरने के बाद जनाज़े की नमाज़ नहीं पढ़ी जाती, मुसलमानों के क़ब्रिस्तान में दफ़्न नहीं होता।

और आख़िरत में ज़ाया होना यह है कि इबादतों में सवाब नहीं मिलता, हमेशा-हमेशा के लिये दोज़ख़ में दाख़िल हो जाता है।

मसलाः- अगर यह शख़्स फिर मुसलमान हो जाये तो आख़िरत में दोज़ख़ से बचने और दुनिया में आईन्दा के लिये इस्लाम के अहकाम का जारी होना तो यक़ीनी है लेकिन दुनिया में अगर हज कर चुका है तो वुस्अत व गुंजाईश अगर हो तो दोबारा उसका फ़र्ज़ होना न होना और आख़िरत में पिछले नमाज़ रोज़े के सवाब का बदला मिलना न मिलना इसमें इख़्तिलाफ़ (मतभेद) है, इमाम अबू हनीफ़ा रहमतुल्लाहि अलैहि दोबारा हज को फ़र्ज़ कहते हैं, और पिछली नमाज़ व रोज़े पर सवाब मिलने के क़ायल नहीं, और इमाम शाफ़ई रहमतुल्लाहि अलैहि दोनों मामलों में इख़्तिलाफ़ करते हैं।

मसलाः- लेकिन जो काफ़िर असली हो और उस हालत में कोई नेक काम करे उसका सवाब अधर में रहता है, अगर कभी इस्लाम ले आया तो सब पर सवाब मिलता है और अगर कुफ़्र पर ही मर गया तो सब बेकार रह जाता है। हदीस में 'अस्लमतु अला मा अस्लफ़्तु मिन ख़ैरिन' इसी मायने में आया है।

मसलाः- ग़र्ज़ कि मुर्तद (दीन इस्लाम को छोड़ देने वाले) की हालत असली काफ़िर से बदतर है, इसी वास्ते असली काफ़िर से जिज़या (इस्लामी हुकूमत में रहने और जान, माल और अक़ीदे की हिफ़ाज़त का टैक्स) क़ुबूल हो सकता है और मुर्तद अगर इस्लाम न लाये अगर मर्द है तो क़त्ल कर